Digitized by eGangotri

आदर्श कथायें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

Adarsh Kathayen

आदर्श कथाएं

[महापुरुषों की जीवनियों की कुछ आदर्श कहानियां]

cat- 25850
Dt. 12-12

Anand Kumar

लेखक
आनन्दकुमार

स्कैन्ड/Scanned

Sh. Ghulam Mohamad & Sons.
Book-Sellers, Publishers & Stationers
Govt., Order Suppliers,
Maisuma Bazar, SRINAGAR KASHMIR.

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

H 83·1
R 11 A

मूल्य : एक रुपया पचीस नये पैसे
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

Acc. No 25651
Cost Rs. 1.50
Date 20.1.66
Sri Pratap Singh Library Srinagar
396
A1S5

इस पुस्तक में क्या है

इस पुस्तक में देश-विदेश के कुछ चुने हुए ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन की सच्ची घटनाएं दी गई हैं। दीप-शिखा छोटी होकर भी बड़ी मनोहर और लोकोपयोगी होती है। ये घटनाएं भी उसी प्रकार छोटी अवश्य हैं, पर चोखी-अनोखी और काम की हैं। आशा है, इनके द्वारा पाठकों का मनोरंजन तो होगा ही साथ-साथ उन्हें ज्ञान का प्रकाश भी मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विषय-सूची

गौतम बुद्ध	५
महात्मा ईसा	७
मुहम्मद साहब	६
गुरु नानक	११
यामुनाचार्य	१६
रामानुजाचार्य	२३
चाणक्य	२५
सिकन्दर महान	२६
कुणाल	३४
महाराजा बिम्बिसार	४१
सिकन्दर और चित्रकार	४४
चाणक्य और उसकी माता	४७
बादशाह महमूद और गुलाम	५०
स्पार्टा का डिक्टेटर और एक युवक	५३
सोलन और थेल्स	५७
सिकन्दर और तक्षशिला-नरेश	६२
औरंगज़ेब और मुल्ला सालह	६५
प्लेटो	७०
गुरु अर्जुनदेव	७३
खलीफा उमर	७५
तुलसीदास	७६
कवि बनारसीदास, सन्त शीतलप्रसाद	८१
तैमूरलंग	८३
रहीम	८६
रणजीतसिंह	८८
गालिब	६१
रामकृष्ण परमहंस	६४
चैतन्य	६६
महात्मा गांधी	६६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१

गौतम बुद्ध

'सब जग जलता देखिया'

गौतमी नाम की एक स्त्री का इकलौता बेटा मर गया। वह शोक से व्याकुल होकर रोती हुई महात्मा बुद्ध के पास पहुंची और उनके चरणों पर गिरकर बोली—हे भगवान ! किसी तरह मेरे बेटे को जिला दो……कोई ऐसा मंत्र पढ़ दो कि मेरा लाल उठ बैठे।

महात्मा बुद्ध ने उसके साथ सहानुभूति दिखाते हुए कहा—गौतमी ! शोक न करो, हम तुम्हारे मृत बालक को फिर जीवित कर देंगे ; लेकिन इसके लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तुम किसी ऐसे घर से सरसों के कुछ दाने मांग लाओ जहां कभी किसी प्राणी की मृत्यु न हुई हो।

गौतमी को इससे कुछ शान्ति मिली। वह दौड़ती हुई गांव में पहुंची और ऐसा घर ढूंढ़ने लगी जहां किसीकी मृत्यु न हुई हो। बहुत ढूंढ़ने पर भी उसे ऐसा एक भी घर नहीं मिला। वह हताश होकर लौट आई और महात्मा बुद्ध से बोली—देव, ऐसा तो एक भी घर नहीं, जहां कोई न कोई न मरा हो।

तब बुद्ध बोले—गौतमी ! अब तुम यह मानकर सन्तोष करो कि केवल तुम्हारे ही ऊपर ऐसी विपत्ति नहीं पड़ी है; सारे संसार में ऐसा ही होता है और लोग ऐसे दुःख को धैर्यपूर्वक सहते हैं।

गौतमी को विश्वास हो गया कि अकेली वही नहीं, सारी दुनिया ही दुःखी है—'सब जग जलता देखिया अपनी-अपनी आग।' इससे उसकी व्यथा बहुत कुछ शान्त हो गई और वह चुपचाप उठकर चली गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२

महात्मा ईसा

'बुरा जो देखन मैं चला'

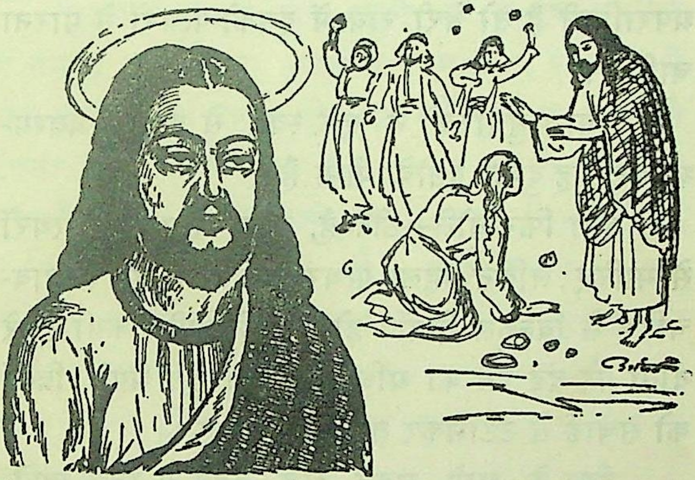

एक बार कुछ लोग एक स्त्री को खरी-खोटी सुनाते हुए पकड़कर ईसा मसीह के सामने ले आए। उन्होंने उस स्त्री की ख़ूब बुराई करके ईसा से उसको कठोर दंड देने की प्रार्थना की। इसके लिए सभी समाज-सुधारक बड़े व्यग्र थे।

ईसा मसीह कुछ देर तक चुप रहे। उन्होंने एक बार स्त्री को देखा। वह लज्जा से सिर झुकाए चुप-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गए। वहां वह एक खाट पर बीमार पड़ी थी। उसकी दशा बहुत बुरी थी। घर में कोई पानी देनेवाला भी नहीं था। बुढ़िया अकेली पड़ी कराह रही थी। मुहम्मद साहब को देखते ही उसके होश उड़ गए। उसने सोचा कि वे मौका देखकर बदला निकालने आए हैं। लेकिन क्षण-भर में ही उसका भ्रम मिट गया।

मुहम्मद साहब ने उसका कष्ट पूछा, उसे सान्त्वना दी। फिर वे उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग गए। जब तक बुढ़िया चंगी नहीं हुई, तब तक वे वहां से नहीं टले। उस समय उन्हें उसके अपकारों का ध्यान भी नहीं आया। अपनी भलाई से उन्होंने पराये को भी अपना बना लिया।

बुढ़िया को अपने दुर्व्यवहार पर कितनी लज्जा-ग्लानि हुई होगी, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। स्वस्थ होने पर उसने मुहम्मद साहब से रो-रोकर अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगी। मुहम्मद साहब उसके सारे दोषों को पहले ही पचा चुके थे। बुढ़िया सच्चे हृदय से उनके धर्म को मानने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४

गुरु नानक

'मन जीते जग जीत'

शाम का समय था ।

गुरु नानक भ्रमण करते हुए एक गांव में पधारे और एक पेड़ के नीचे रात बिताने के लिए ठहर गए । उनके आते ही भक्तों की भीड़ उमड़ पड़ी । घंटों सत्संग चलता रहा ।

रात अधिक हो चली थी । गुरुजी ने ग्रामवासियों को अमूल्य ज्ञान-प्रसाद देकर स्नेह से विदा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कर दिया। कृतार्थ होकर सब अपने-अपने घरों को चले गए।

चारों ओर सन्नाटा था। गुरु नानक अपने आसन पर विचार-मग्न बैठे थे। उसी समय एक सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की डरती, सकुचाती-सी आकर उनके सामने खड़ी हो गई।

गुरु का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने कोमल स्वर में पूछा—बेटी, तुम कौन हो, क्यों आई हो?

लड़की को ऐसा लगा मानो उनके रूप में लोक-शोकहारी भगवान ही उसका दुःख पूछ रहे हों। जिसे कोई नहीं पूछता था, उसे एक पूछनेवाला तो मिला। उसके मन में आया कि हृदय का सारा भार उतारकर इस समर्थ व्यक्ति के आगे रख दूं। उसका चित्त अपनी कष्ट-कथा सुनाने के लिए व्यग्र हो उठा।

अपना दुःख उसीको सुनाना चाहिए जो दूसरों के दुःख को समझ सके। कहा भी है—'आपन वेदन तेहि निवेदिय जे परवेदन जान।' गुरु नानक पर-दुःख को अपना दुःख समझते थे। परोपकार ही उनके जीवन का उद्देश्य था। ऐसे लोकोपकारी के आगे वह लड़की अपना दुखड़ा न रोती तो कहां रोती! वह आंखों में आंसू भरकर उनके चरणों पर गिर पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गुरु नानक ने उसे धैर्य-आश्वासन देते हुए कहा—पुत्री, तुझे क्या कष्ट है; सच-सच बता, मैं यथाशक्ति तेरी सहायता करूंगा।

धूप से व्याकुल को मानो छाया मिल गई। लड़की अपने मन का भार उतारने लगी। वह बोली—महात्माजी, मैं इस गांव की एक गरीब लड़की हूं। मेरे पिता किसी दबाव में पड़कर इसी गांव के एक साठ वर्ष के धनी-मानी वृद्ध से मेरा विवाह करने जा रहे हैं। वृद्ध महाशय अब तक सात विवाह कर चुके हैं। उनकी तीन पत्नियां मर चुकी हैं, चार अभी जीवित हैं। अब वे मुझे अपनी आठवीं स्त्री बनाने जा रहे हैं। जब मेरे सौभाग्यवती होने के दिन आए तो मैं इस तरह अभागिनी बनने जा रही हूं। अपना दुःख किससे कहूं, कैसे कहूं? मेरी व्यथा को कौन समझेगा? समाज में लड़की को अपने बारे में कुछ बोलने का अधिकार भी तो नहीं है। इस अन्याय को कौन रोकेगा? मैं सब ओर से निराश होकर आपकी शरण में आई हूं। आप दीन-दुखियों के सहारा हैं। मेरे भगवान, मुझे उबारिए, मुझे किसी तरह बचा लीजिए, मैं दुःख के अथाह सागर में डूब रही हूं। अपनी इस पुत्री की रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में हूं। आपके रहते हुए एक निर्बल प्राणी पर ऐसा अत्याचार न होना चाहिए।

गुरु नानक ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—बेटी, अब तू अपने घर जा; भगवान तेरा भला करे; मुझसे जो कुछ हो सकेगा, मैं अवश्य करूंगा।

लड़की उनसे बारम्बार दया-कृपा की भिक्षा मांगकर चली गई। उसे विश्वास हो गया कि गुरुजी उसका मनोरथ अवश्य पूरा कर देंगे। उसकी श्रद्धा सफल हो गई।

प्रातःकाल गांव के सारे नर-नारी गुरु नानक को विदा करने आए। उनमें साठ वर्ष का वह वृद्ध भी था। सबको उपदेश देने के बाद गुरुदेव ने उस बड़े आदमी को अपने पास एकान्त में बुलाकर कहा—-भाई, तुम धन-वैभव से सम्पन्न हो, फिर भी तुम्हारे चेहरे को देखकर ऐसा लगता है कि तुम भीतर से बहुत सुखी और सन्तुष्ट नहीं हो; तुम्हें शान्ति नहीं मिलती, क्या यह सत्य है ?

वृद्ध ने हाथ जोड़कर कहा—हां महाराज, लाख प्रयत्न करके भी मैं अभी तक सुखी नहीं हो पाया; मेरा चित्त बहुत ही अशान्त रहता है; मेरी कामनाएं पूरी नहीं होतीं, अधूरी ही बनी रहती हैं। आप कृपा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करके कोई ऐसा उपाय बताएं जिससे मैं जीवन में सुख-शान्ति प्राप्त कर सकूं।

गुरु नानक ने दृष्टि को एकाग्र करके उसकी ओर देखा। उनकी आंखों से उनका आत्म-तेज प्रकाशित होने लगा। अन्धकार से घिरे हुए संसार के आगे मानो सूर्य उदय हो गया। दुर्बल आत्मा पर महात्मा का प्रभाव क्यों न पड़ता! उस वृद्ध का चित्त शुद्ध एवं स्थिर होकर उनकी ओर आकर्षित हो गया। लोहा चुम्बक से दूर कैसे भागता! तब गुरु नानक ने धीरे से उसे एक मन्त्र दिया। वह था—'मन जीते जग जीत।'

इसको सुनते ही वह बुड्ढा मोह-निद्रा से जग गया। वह गुरु के चरणों पर गिर पड़ा। उसी क्षण से उसने संयम-नियम का व्रत ले लिया। फिर उसके मन में विवाह करने का विचार ही नहीं उठा।

इस प्रकार गुरु नानक की कृपा से एक कन्या का भाग्य फूटते-फूटते बच गया और साथ-साथ एक अनाचारी का जीवन भी सुधर गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

५

यामुनाचार्य

'ज्ञान-वृद्ध बालक'

यामुनाचार्य वैष्णव सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य थे। उनका जन्म संवत् १०१० में हुआ था। भाष्याचार्य उनके गुरु थे।

उन दिनों पाण्ड्यराज की सभा में कोलाहल नाम का एक दिग्गज पण्डित रहता था। वह जिन पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराता था, उनसे राजा की तरह प्रति वर्ष कर लेता था। यह उसका नियम था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक बार भाष्याचार्य से भी उसका घोर तर्क-युद्ध हुआ। भाष्याचार्य पराजित हो गए और प्रतिवर्ष उसे कर देने लगे। अपनी पराजय का हाल उन्होंने अपने शिष्यों को नहीं बताया। कहने योग्य बात भी नहीं थी।

कुछ समय तक तो भाष्याचार्य नियम से कर के रुपये कोलाहल के पास भेजते रहे; लेकिन एक बार पैसे की तंगी के कारण कई वर्षों तक कुछ नहीं भेज पाए। एक दिन वे कहीं बाहर गए थे। उसी समय कोलाहल का सिपाही उनसे कर वसूलने आया। भाष्याचार्य को न पाकर उसने यामुनाचार्य से कर के सारे रुपये तुरन्त चुकता कर देने को कहा। यामुनाचार्य इस विषय में कुछ नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने उससे पूछा—कैसा कर? किसने तुम्हें भेजा है?

सिपाही ने आंखें दिखाते हुए कहा—पूछते हो, कैसा कर? किसने भेजा है? जान-जानकर अनजान बनते हो! तुम्हें पता नहीं है कि तुम्हारा गुरु हमारे राजपंडित स्वनामधन्य कोलाहलजी से शास्त्रार्थ में हारकर उनका करदाता बन गया है? वर्षों से उसने न कर दिया, न मुंह दिखाया; अब भागा-भागा घूमता है। कुशल चाहो तो अभी सारे रुपये दे दो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उस समय यामुनाचार्य केवल बारह वर्ष के बालक थे। अपने पूज्य गुरु का अपमान वे नहीं सह सके। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—यदि तुम्हारे राजपंडित को विद्या-बुद्धि का बड़ा अभिमान है तो मैं उन्हें शास्त्रार्थ की चुनौती देता हूं। उनसे जाकर कह दो कि गुरुवर भाष्याचार्य के शिष्य को पहले हराकर तब कर लेने का साहस करें।

कोलाहल का दूत उन्हें धमकियां सुनाता हुआ चला गया। उसने राजसभा में जाकर सब कुछ अपने स्वामी से कहा। पाण्ड्यराज ने भी इसे सुना। जिस कोलाहल के नाम से बड़े-बड़े पंडित कांपते थे, उसी-को एक बारह वर्ष के बालक ने शास्त्रार्थ के लिए खुली चुनौती भेजी थी। इसपर सारी सभा को आश्चर्य हुआ। कोलाहल तो आग-बबूला हो गया। उसने राजा से उस धृष्ट बालक को शास्त्रार्थ के लिए तुरन्त बुलवाने का आग्रह किया। राजा ने एक दूत भेज दिया।

राजदूत ने आकर यामुनाचार्य से अपने साथ राज-सभा में चलने को कहा। यामुनाचार्य ने बड़े गर्व से उत्तर दिया—राजा से जाकर कह दो कि हम इस तरह नहीं आ सकते; यदि वे राजपंडित के साथ शास्त्रार्थ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के लिए मुझे बुलाना चाहते हैं तो सम्मानपूर्वक मुझे आमन्त्रित करें और मेरे आने के लिए सवारी भेज दें।

दूत चला गया। राजा ने यामुनाचार्य का सन्देश पाकर शास्त्रार्थ का निमन्त्रण और एक सुन्दर रथ तत्काल भेज दिया। उस समय तक भाष्याचार्य बाहर से लौट आए थे। उन्हें यह सब नहीं मालूम था। अपने द्वार पर राजा का रथ देखकर वे बहुत चकित तथा भयभीत भी हुए। उन्होंने समझा कि कोलाहल को कर न देने के अपराध में कोई अधिकारी उन्हें दंड देने आया है। इतने में राजदूत ने आकर यामुनाचार्य को राजा का निमन्त्रण-पत्र दिया। भाष्याचार्य का कौतूहल और भी बढ़ गया। उन्होंने यामुनाचार्य से पूछा। यामुनाचार्य ने सारा हाल सुनाकर शास्त्रार्थ के लिए अपना दृढ़ संकल्प भी बता दिया। इसे सुनकर गुरुजी अपना सिर पीटते हुए बोले—यामुन, तूने यह क्या किया; कोलाहल जैसे दुर्दम पंडित से टक्कर लेना तो पत्थर पर सिर पटकने के बराबर है; ऐसा दुस्साहस तुझे नहीं करना चाहिए था; वह तो बड़े-बड़े वयोवृद्ध विद्वानों के भी मुंह बन्द कर देता है; तू तो अभी बालक है, उसके सामने मुंह भी नहीं खोल सकेगा; वहां तेरी और मेरी भी हंसी होगी और बाद में तेरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिए भी मुझे प्रतिवर्ष कर देना पड़ेगा—इसलिए बेटा, रथ को वापस भेज दे और अपने लड़कपन के लिए पत्र लिखकर राजा तथा पंडित-शिरोमणि कोलाहल से क्षमा मांग ले। अपना बल देखकर ही किसीसे भिड़ना चाहिए। अभी तो वह हाथी जैसा और उसके सामने तू खरगोश जैसा है।

गुरुजी ने बहुत समझाया, लेकिन मेधावी बालक नहीं माना। उसने हठ करके भाष्याचार्य से जाने की स्वीकृति ले ही ली। गुरुजी की चरण-रज मस्तक पर लगाकर यामुनाचार्य बड़े गर्व से राजा के रथ में बैठे और राज-सभा में जा पहुंचे। राजा ने उन्हें सभा में ऊंचा आसन दिया। उनका मुख-मण्डल उस समय आत्म-तेज से दमक रहा था। बालक होकर भी यामुनाचार्य सबसे अधिक प्रभावशाली प्रतीत होते थे। उनके आगे सभी पंडितों की श्री मन्द पड़ गई।

वहां की रानी यामुनाचार्य के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर पति से बोली—स्वामी, यह साक्षात् विद्या का अवतार जान पड़ता है; पंडितों के बीच में यह हीरे की भांति चमक रहा है; कोलाहल इसका मान-मर्दन नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा ने कहा–क्या कहती हो रानी ! यह तो कोलाहल की एक फूंक से उड़ जाएगा । बेचारा बकरे की तरह बलिदान के लिए आया है ।

इस तरह राजा-रानी आपस में वाद-विवाद करने लगे । राजा ने उत्तेजित होकर कहा—यदि तुम्हारी बात सत्य निकली तो मैं आधा राज्य इस बालक को दे दूंगा । रानी ने भी कहा—और यदि आपकी बात सत्य निकली तो मैं आपकी दासी की दासी बनकर रहूंगी ।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । यामुनाचार्य ने अपने प्रतिद्वंद्वी महापंडित से इस तरह के अनेक प्रश्न किए—१. मैं कहता हूं कि पाण्ड्य-नरेश बड़े ही धर्मात्मा हैं, इसका खंडन कीजिए । २. यहां की रानी सती सावित्री की तरह पतिव्रता हैं, इसका खंडन कीजिए । ३. मैं कहता हूं कि आपकी माता बांझ नहीं हैं—यदि आप मुझसे सहमत नहीं हैं, तो मेरी बात का खंडन कीजिए ।

कोलाहल ऐसी बातों को सुनकर चकरा गया । वह एक भी बात का खंडन नहीं कर सका । अन्त में यामुनाचार्य ने इनकी ऐसी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की कि पंडित लोग उनकी योग्यता पर मुग्ध होकर 'धन्य,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धन्य' चिल्ला उठे। कोलाहल का सिर नीचा हो गया। ज्ञानवृद्ध बालक यामुनाचार्य ने सबके देखते-देखते उस प्रबल प्रतिद्वंद्वी को पछाड़ दिया।

पाण्ड्यराज ने यामुनाचार्य को विजयी घोषित करके अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हें अपना आधा राज्य दे दिया।

25651

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

६

रामानुजाचार्य

'पर-हित सदृश धर्म नहिं भाई'

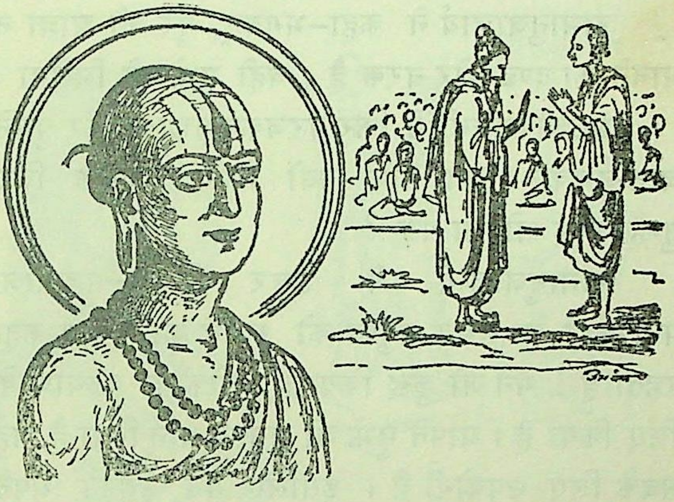

स्वामी रामानुजाचार्य शठकोपस्वामी के शिष्य थे। गुरुजी ने दीक्षा देते समय उन्हें जीव के उद्धार तथा ईश्वर-प्राप्ति का गूढ़ रहस्य बताकर उसे अत्यन्त गुप्त रखने का आदेश दिया था।

रामानुजाचार्य ऐसा नहीं कर सके। गुरुजी से जो अमूल्य ज्ञान-धन उन्हें मिला था उसे वे समाज में जाकर सबको बांटने लगे। शठकोपस्वामी को जब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसका पता चला तो वे बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने तुरन्त रामानुजाचार्य को बुलाया और डांटकर कहा—तुम मेरी आज्ञा के विरुद्ध धर्म के गोपनीय रहस्यों को प्रकाशित कर रहे हो ; इसका परिणाम जानते हो ?

रामानुजाचार्य ने कहा–भगवन्, गुरु की आज्ञा न मानने का दण्ड घोर नरक है ; वही मुझे भी मिलेगा।

शठकोपस्वामी ने फिर गरजकर पूछा—फिर तुमने जान-बूझकर ऐसा पाप क्यों किया, जिसके लिए तुम्हें नरक भोगना पड़े ?

रामानुजाचार्य ने उत्तर दिया—महाराज, परोपकार के समय मनुष्य को स्वार्थ का ध्यान कहां रहता है ! मैंने जो कुछ किया है, लोक के कल्याण के लिए किया है। आपने मुझे जो अमूल्य ज्ञान दिया है, वह सबके लिए उपयोगी है। इसलिए मैंने उसको अपने पास छिपाकर रखना उचित नहीं समझा। यदि इसके लिए मुझे घोर नरक में जाना पड़े तो मुझे दुःख नहीं होगा।

गुरुदेव इस उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने रामानुजाचार्य को गले से लगा लिया और उन्हें अनेक आशीर्वाद देकर समाज में ज्ञान-प्रचार के लिए स्वयं उत्साहित किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

७

चाणक्य

'निन्दक नियरे राखिये'

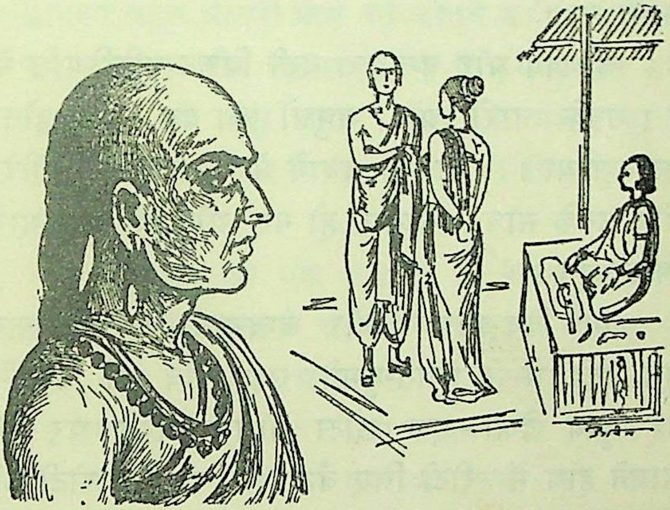

उस समय की बात है, जब चाणक्य और चन्द्रगुप्त मिलकर भारतवर्ष में मौर्य-साम्राज्य की स्थापना कर रहे थे। सारा देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था। बिखरी हुई शक्तियों को समेटकर एक राष्ट्र का निर्माण करना सहज काम नहीं था। चाणक्य और चन्द्रगुप्त एक सेना इकट्ठी करके देश के भीतरी राज्यों को जीतने में लगे थे। उनके सामने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सबसे बड़ी समस्या यह थी कि ज्योंही वे एक राज्य या प्रान्त को जीतकर दूसरे पर आक्रमण करते त्योंही शत्रु लोग जीते हुए देश पर पुनः अधिकार कर लेते थे। इस प्रकार उनका किया-कराया चौपट हो जाता था।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त बड़ी विकट परिस्थिति में थे। उनके चारों ओर शत्रुओं का दल प्रबल होता जा रहा था। वे उनको दबाने में असमर्थ थे। धीरे-धीरे उनके साधन समाप्त हो गए और वे मारे-मारे फिरने लगे।

एक दिन चाणक्य और चन्द्रगुप्त वेश बदलकर घूम रहे थे। घूमते-घूमते एक गांव में उन्होंने यह दृश्य देखा—एक छोटा बालक अपने घर के सामने हाथ में रोटी लिए बैठा था; वह उस रोटी को बीच से नोचता था, इसीलिए उसके किनारे के हिस्से झूलकर गिर पड़ते थे। इसीपर उसकी मां उसे डांटती हुई बोली—अरे छोकरे! तू भी चाणक्य जैसा ही मूर्ख जान पड़ता है; रोटी को किनारे से तोड़-कर खा।

स्त्री के मुख से अपनी निन्दा सुनकर चाणक्य चौंक पड़ा। उसने तुरन्त पास खड़े होकर पूछा—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रीमतीजी, चाणक्य को तो लोग बड़ा चतुर बताते हैं ; आपने किस बात से उसको मूर्ख मान लिया है ?

स्त्री ने हंसकर कहा—भले आदमी, इतना भी नहीं जानते ! उस मूर्ख ने देश के बाहरी प्रान्तों को छोड़कर पहले भीतरी भाग को जीतने का प्रयत्न किया ; फल यह हुआ कि वह शत्रुओं से घिर गया और उसके हाथ कुछ भी नहीं लगा । घर के भीतर का धन चोरों से तभी बचता है, जब बाहर की किवाड़ें मज़बूत और बन्द हों ।

अक्लमन्द को एक इशारा ही काफी होता है । इस खरी आलोचना से चाणक्य को अपनी भूल का पता चल गया । उसने चन्द्रगुप्त को लेकर दुबारा एक नई सेना संगठित की । उसकी सहायता से उन्होंने पहले उन राज्यों को जीतना आरम्भ किया जो देश की चारों सीमाओं पर थे । सीमा प्रान्तों को मुट्ठी में करके उन्होंने भीतरी राज्यों को बाहर से घेर लिया । उनके विरोधियों को न तो बाहर से सहायता मिलने की कोई आशा रही और न भागकर जान बचाने की । वे लोग तो एक प्रकार से बन्दी-गृह में पड़ गए । चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने उन्हें सहज ही में जीत लिया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चाणक्य ने अपनी जो निन्दा सुनी थी, वह कटु होकर भी उसके बड़े काम की साबित हुई। इसीलिए कबीर ने कहा है—

'निन्दक नियरे राखिए,
आंगन कुटी छवाय।
साबुन औ' पानी बिना,
निरमल करै सुभाय ॥'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

८

सिकन्दर महान

'विश्वास कीजिए'

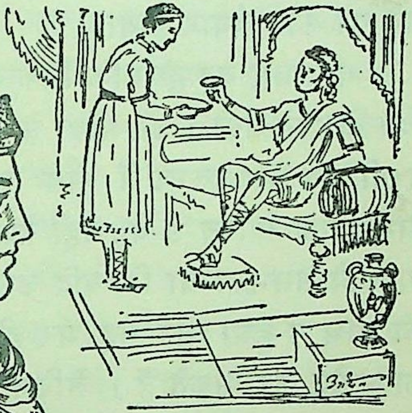

वीरवर सिकन्दर अपनी सेना लेकर धूमधाम से फारस देश पर चढ़ाई करने जा रहा था। रास्ते ही में वह यकायक बीमार पड़ गया। देखते-देखते उसकी हालत अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई।

सिकन्दर के साथ उस समय यूनान के कई नामी हकीम थे। लेकिन किसीने भी उसको कोई दवा नहीं दी। सबको यह विश्वास हो चला था कि अब सिकन्दर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के प्राण नहीं बचेंगे ; इसलिए हरएक यह सोचता था कि यदि दवा देने के बाद सिकन्दर मर गया तो लोग सन्देह कर सकते हैं कि हकीम ने जान-बूझकर उसकी हत्या की है। अपने ऊपर इस तरह का संकट मोल लेने को कौन तैयार होता !

परिणाम यह हुआ कि सिकन्दर की दशा दिन-प्रति दिन बिगड़ने लगी। उसे पीड़ा से तड़पते देखकर हकीमों ने भी भय वश इलाज में हाथ नहीं लगाया। फिलिप नामक एक व्यक्ति से यह नहीं देखा गया। वह भी इस बात को समझता था कि यदि उसकी दवा से सिकन्दर को लाभ न हुआ और वह मर ही गया तो लोग हत्या का सन्देह कर सकते हैं। लेकिन ऐसे संकट में स्वामी के काम न आना उसने अनुचित समझा। फिलिप सिकन्दर का विश्वासपात्र मित्र और सेवक था। ऐसे समय में उसने अपने जीवन की परवाह छोड़ दी और मौत के चंगुल में फंसे हुए सिकन्दर से कहा—स्वामी ! आप थोड़ा धैर्य रखें ; मैं अभी दवा तैयार करके देता हूं ; उससे आप जल्दी ही चंगे हो जाएंगे।

सिकन्दर को इस बात का भरोसा था कि फिलिप उसके हित के लिए जो कुछ भी हो सकेगा, अवश्य करेगा। वह बड़ी आशा से दवा की प्रतीक्षा करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

फिलिप बाहर दवा तैयार करने चला गया ।

इसी बीच में सिकन्दर को अपने एक उच्च अधिकारी का एक गुप्त पत्र मिला । उसने पड़े-पड़े उसको खोलकर पढ़ा । पत्र-लेखक ने उसको फिलिप से सावधान करते हुए लिखा था कि फारस के बादशाह ने आपको दवा के साथ विष देकर मारने का गुप्त षड्यन्त्र किया है और इस काम के लिए उसने फिलिप को असंख्य धन और अपनी लड़की तक देने का वायदा किया है ।

फिलिप ने अपनी इच्छा से दवा देने के लिए जैसी व्यग्रता दिखाई थी, वह भी शंका उत्पन्न करनेवाली थी । लेकिन सिकन्दर दृढ़ विचारों का आदमी था । इस पत्र से भी वह संशय में नहीं पड़ा । उसने उसको चुपचाप अपने तकिये के नीचे रख दिया ।

थोड़ी देर बाद फिलिप अपने हाथ में दवा का प्याला लेकर सिकन्दर के कमरे में आया । यूनानी दल के सभी प्रमुख व्यक्ति वहां उपस्थित थे । सिकन्दर ने बिना किसी तरह का सन्देह प्रकट किए एक हाथ से प्याले को पिया और दूसरे हाथ से उस पत्र को निकालकर फिलिप के हाथ में दे दिया । उधर फिलिप उसको पढ़ने लगा और इधर सिकन्दर प्रेम से उसकी दवा को पीने लगा । अद्भुत दृश्य था । सिकन्दर पूर्ण विश्वास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के साथ उस दवा को अमृत मानकर पी गया, जिसमें विष होने की चेतावनी दी गई थी। फिलिप के लिए उसके हृदय में जो प्रेम और विश्वास था, वह उसके चेहरे से झलक रहा था। उधर उस पत्र को पढ़ने के बाद फिलिप के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। उसके सामने—'तब न गए तो अब गए' की परिस्थिति थी। उसने भगवान की साक्षी देते हुए कहा—स्वामी ? द्वेष-वश मेरे विरुद्ध ऐसा झूठा अभियोग लगाया गया है; मैं निर्दोष हूं; आप मेरे ऊपर किसी तरह का सन्देह न करें; मैंने अपनी समझ से आपको अच्छी से अच्छी दवा दी है; आगे ईश्वर मालिक…। यह कहते-कहते उसकी आंखों से आंसू निकल आए। बार-बार वह यही मनाता था कि हे भगवान, कहीं कुछ हो न जाए।

फिलिप की दवा सचमुच बड़ी तेज़ थी। उसके प्रभाव से सिकन्दर एकदम बेचैन हो गया; उसकी नाड़ी मन्द पड़ गई और बोली भी बन्द हो गई। सब उसको मृत मानकर फिलिप को घूर-घूरकर देखने लगे। अब उसके विश्वासघाती होने में किसीको सन्देह नहीं रहा। उस दशा में भी फिलिप ने आशा नहीं छोड़ी।

थोड़ी ही देर बाद सिकन्दर की हालत सुधर गई। उसका शरीर चैतन्य हो गया। दवा ने चमत्कारी प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिखाया। सिकन्दर उठ बैठा। उसका रोग पता नहीं कहां चला गया। उसने फिलिप को गले से लगाकर कहा—मेरे प्राणदाता! तुम किसी तरह की चिन्ता मत करो; मुझे तुम्हारे ऊपर तनिक भी सन्देह होता तो मैं उस पत्र को पाकर तुम्हारे हाथ की दवा न पीता। मैंने तुम्हारा विश्वास किया और उसका अच्छा ही फल पाया।

सिकन्दर ने फिलिप को पुरस्कार में बहुत कुछ दिया; लेकिन फिलिप के प्रति उसने जो विश्वास प्रकट किया था वही उसके लिए सबसे बड़ा पुरस्कार था। उसको पाकर वह कृतार्थ हो गया। उसके द्वेषियों का मनोरथ सफल नहीं हुआ। सिकन्दर फिलिप को पहले से भी अधिक मानने लगा और फिलिप ने भी अपनी विश्वासपात्रता में कमी नहीं आने दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

६

कुणाल

'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू'

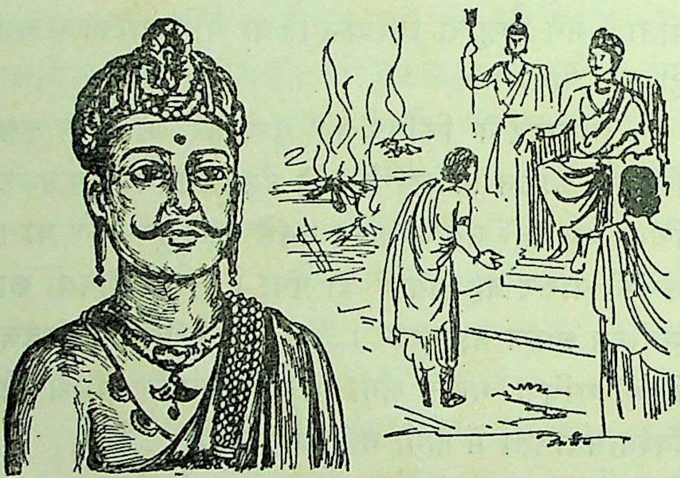

भारत-सम्राट अशोक का ज्येष्ठ पुत्र कुणाल जैसा रूपवान था, वैसा ही सुशील भी था। स्वभाव-स्वरूप—दोनों से वह देवता जैसा सौम्य था। अशोक किसी कारण से उसको बचपन से ही उज्जैन में रखता था। जब वह बड़ा हुआ तो शरत्-श्री नाम की एक सुन्दरी राजकन्या के साथ उसका विवाह हो गया। दोनों उज्जैन में बड़े सुख से रहने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अशोक चाहता था कि उसका प्रिय पुत्र विवाह के बाद भी अध्ययन में लगा रहे। इसके लिए उसने एक दिन अपने हाथ से कुणाल के नाम प्राकृत भाषा में एक छोटा-सा पत्र लिखा। उस समय कुणाल की सौतेली मां रानी तिष्यरक्षिता वहां बैठी थी। वह उस पत्र को हाथ में लेकर पढ़ने लगी। उसमें 'अध्ययन करो' के लिए अशोक ने प्राकृत भाषा में 'अधीउ' शब्द लिखा था। वह शब्द तिष्यरक्षिता के बड़े काम का था। कुणाल उसके हृदय का कांटा था। 'अधीउ' शब्द को देखते ही विमाता के मन का पाप जग गया। उसने पति की आंख बचाकर अपनी आंख के काजल से 'अ' के ऊपर एक बिन्दी बना दी। 'अधीउ' का 'अंधीउ' हो गया। 'अंधीउ' का अर्थ हुआ 'अन्धे हो जाओ।'

इसके बाद उस चालाक स्त्री ने पत्र को मोड़-कर पति के हाथ में दे दिया। अशोक ने उसपर अपनी मोहर लगाकर उसे एक दूत के हाथ रवाना कर दिया।

पाटलिपुत्र से सम्राट का पत्र लेकर दूत कई दिनों बाद उज्जैन पहुंचा। वहां उसने युवराज को पत्र दिया। कुणाल और शरत्-श्री ने बड़ी उत्सुकता से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसको खोला। उसे पढ़ते ही उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। पत्र पर अशोक के हस्ताक्षर ही नहीं, उसकी मुहर भी लगी थी। इसीलिए उसके जाली होने का संदेह कोई कैसे करता। कुणाल उसको बार-बार ध्यान से पढ़कर यह सोचने लगा कि उसके पिता ने किस बात पर रुष्ट होकर उसे ऐसा कठोर दंड दिया है। बहुत सोचने पर भी इसका कोई कारण उसकी समझ में नहीं आया।

कुणाल ने इस विषय में अधिक तर्क-वितर्क करना उचित नहीं समझा। अशोक उसका पिता ही नहीं, देश का राजा भी था। सभी दृष्टियों से उसकी आज्ञा का पालन करना कुणाल का धर्म था। उसने आंख मूंदकर यह आज्ञा मान ली।

वहां तुरन्त एक अंगीठी मंगवाई गई। उसमें लोहे की दो सींकें तपाई जाने लगीं। कुणाल अपने हाथों से अपनी आंखों को फोड़ने के लिए तैयार हो गया। उसकी पत्नी ने तथा अन्य लोगों ने उसे बहुत रोका, लेकिन पिता और राजा की बात के आगे उसने किसीकी नहीं सुनी। सबके देखते-देखते उसने जलती हुई लोहे की सींकों से अपने दोनों नेत्र फोड़ डाले।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुणाल अन्धा हो गया। अथवा यह कहिए कि उसका सारा जीवन अन्धकारमय हो गया। राज्य के सुख-वैभव से उसे विरक्ति हो गई। उस पत्र से उसके मन में यह धारणा हो गई थी कि अशोक उससे बहुत ही रुष्ट है। इसलिए उसने महल में रहना उचित नहीं समझा। वह एक अनाथ, शरणार्थी की भांति महल से निकल पड़ा। उसकी स्त्री शरत्-श्री ने दुर्दिन में भी पति का साथ नहीं छोड़ा। वह अन्धे पति के हाथ की लकड़ी बन गई।

कुणाल शरत्-श्री के साथ इधर-उधर गीत गाता घूमने लगा। गांव के लोग उनका गाना सुनकर जो कुछ दे देते, उसीको खा-पीकर दोनों सन्तोष कर लेते और वहीं पेड़ के तले रात काट लेते थे। इस तरह पति-पत्नी कई वर्षों तक नाना स्थानों में भ्रमण करते रहे। इस बीच में शरत्-श्री से एक पुत्र भी उत्पन्न हो गया।

इधर का यह हाल था, उधर अशोक को सच्ची बातों का पता ही नहीं था। एक तो वह वृद्ध हो चुका था, दूसरे प्रायः बीमार रहता था। ऐसी दशा में वह राज्य की सब बातों को स्वयं देखने-सुनने में असमर्थ था और प्रायः महल में ही पड़ा रहता था। महल में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तिष्यरक्षिता का राज्य था। उसने ऐसा जाल बिछा रखा था कि कुणाल के अन्धे होने का समाचार अशोक के कानों तक नहीं पहुंच सका। बहुत दिनों बाद उसे यही खबर मिली कि कुणाल पागल होकर अपनी स्त्री के साथ कहीं भाग गया। तब से अशोक पुत्र-मोह से बहुत व्याकुल रहता था। रह-रहकर उसे पुत्र-पुत्रवधू की याद सताती थी। उसने दोनों को खोजवाने की बड़ी चेष्टा की, लेकिन तिष्यरक्षिता के आगे उसके सभी प्रयत्न विफल हो गए। उसने दोनों को मृत मानकर उनके मिलने की आशा ही छोड़ दी।

कई वर्षों बाद एक दिन कुणाल स्त्री-बच्चे के साथ घूमता-फिरता पाटलिपुत्र पहुंचा। इतने दिनों में उसका रूप-रंग बदल गया था। कोई उसे कैसे पहचानता ! कुणाल पाटलिपुत्र की सड़कों पर गा-गाकर भीख मांगने लगा। जिसने भी उसका गाना सुना वही मुग्ध हो गया। घूमते-घूमते जब वह गाता हुआ राजद्वार के सामने से निकला तो महल के भीतर बैठे हुए सम्राट अशोक ने भी उसका संगीत सुना। उसके स्वर में अद्भुत आकर्षण था। अशोक को वह बहुत प्रिय और परिचित-सा जान पड़ा। उसने तुरन्त अन्धे गायक को अपने पास बुलवाया। कुणाल स्त्री-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बच्चे के साथ पिता के आगे जाकर खड़ा हो गया। अशोक ने उसे नहीं पहचाना लेकिन उसके हृदय ने अपने टुकड़े को पहचान लिया। उसने बड़े स्नेह से उसका परिचय पूछा। कुणाल के मुख से उसका नाम सुनते ही अशोक चौंक उठा, उसने एक बार बड़े ध्यान से उसकी ओर देखा। भीतर ही भीतर उसका हृदय बोल उठा—हां, यह कुणाल ही तो है।

अशोक की खोई हुई जीवन-निधि मिल गई। वह 'बेटा कुणाल, बेटा कुणाल' कहता हुआ दौड़कर उससे लिपट गया और प्रेम से विह्वल होकर रोने लगा। बहुत दिनों के बिछुड़े हुए पिता-पुत्र अकस्मात् एक दूसरे से मिलकर इतने प्रसन्न हुए कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

वृद्ध सम्राट ने उसे स्नेह से अपने पास बिठाकर पूछा—बेटा कुणाल ! तुम्हारी यह क्या दशा देख रहा हूं; तुम्हारी कमल जैसी सुन्दर आंखें कहां गईं ?

कुणाल ने पिछले पत्र का ज़िक्र करते हुए सब-कुछ कह सुनाया। उसे सुनकर अशोक को बड़ा ही आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसने इस तरह की बात कभी लिखी क्या, सोची भी नहीं थी। उसे इसमें किसीके कुचक्र का सन्देह हो गया और सोचते-सोचते यह याद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आया कि उस दिन तिष्यरक्षिता ने उस पत्र को हाथ में लिया था। और फिर यह समझने में देर न लगी कि 'अधीउ' का 'अंधीउ' क्यों और कैसे हुआ होगा। तिष्यरक्षिता को अशोक ने उसी क्षण चित्त से उतार दिया।

इसके बाद वह कुणाल से बोला—बेटा कुणाल! आज मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। बड़े भाग्य से ही आज यह दिन देखने को मिला है। आज मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूं—मांगो, क्या चाहते हो; आज तो तुम्हें अपना सर्वस्व दे देने में ही मुझे सन्तोष होगा।

कुणाल ने कहा—पिता जी, आपका स्नेह ही बहुत है; मुझे अपने लिए और कुछ नहीं चाहिए।

अशोक ने फिर कहा—कुणाल! मेरा मन कैसे मानेगा! मेरी इच्छा का सत्कार करके कुछ मांगो।

पिता का आग्रह देखकर कुणाल संकोच के साथ बोला—पिताजी, मैं अब अपने लिए क्या मांगूं! हां, अपने इस बच्चे के लिए मेरी एक प्रार्थना है कि आप इसे अपना उत्तराधिकारी मान लें।

अशोक ने उसी क्षण अपने पौत्र को गोदी में उठाकर सिंहासन पर बैठा दिया और अपने हाथ से उसका राजतिलक कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१०

महाराजा बिम्बिसार

'अधिकारी का कर्तव्य'

इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा बिम्बिसार की राजधानी कुशागारपुर में प्रायः नित्य किसी न किसी घर में अनायास आग लग जाती थी। बहुत सावधानी रखने पर भी नगर में एक न एक अग्निकाण्ड होता ही रहता था। बिम्बिसार इसका कारण नहीं समझ पाया। फिर उसने सोचा कि यदि लोग अपने-अपने घर की रक्षा में अधिक सतर्क रहें तो संभवतः भविष्य में ऐसी घटनाएं न होंगी। मंत्रियों की सम्मति से उसने सारे नगर में यह घोषणा करवा दी कि जिस आदमी के घर में आग लगेगी उसे नगर त्यागकर श्मशान में रहना पड़ेगा।

संयोग से, इस घोषणा के बाद राजभवन में ही आग लग गई। महाराज बिम्बिसार स्वयं महल त्यागकर श्मशान-वास की तैयारी करने लगा। मंत्रियों को इसपर बड़ा आश्चर्य एवं दुःख हुआ। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हाथ जोड़कर निवेदन किया—महाराज, आपने जो आदेश निकाला है, वह तो प्रजा के लिए है; आप तो सबके शासक हैं; सभी राज-नियमों के बन्धन से मुक्त हैं, आपके ऊपर यह नियम लागू नहीं होता।

महाराजा ने कहा–मंत्रियो ! मेरा आदेश प्रत्येक कुशागारपुर वासी के लिए है। मैं भी इसी नगर का निवासी हूं; मुझे भी इस नियम के अनुसार ही चलना चाहिए। यदि मैं ही अपने बनाए हुए नियम को तोड़ दूं तो दूसरों से उसका पालन कैसे करवा सकूंगा ! जब तक यह आज्ञा प्रचलित है, तब तक इसका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। मुझे भी नियम की मर्यादा के भीतर रहना चाहिए, तभी लोग सच्चे हृदय से अनुशासन में रहेंगे।

बिम्बिसार उसी दिन से श्मशान में जाकर रहने लगा। प्रजा पर उसकी इस दृढ़ता का बड़ा प्रभाव पड़ा। सबको विश्वास हो गया कि राजा स्वेच्छा-चारी नहीं है–वह दूसरों पर ही नहीं अपने ऊपर भी शासन करना जानता है। ऐसे कर्तव्यपरायण व्यक्ति के प्रति किसके हृदय में श्रद्धा न होगी।

महाराजा के बिना राजधानी का वैभव जाता रहा। पास-पड़ोस के कई शत्रु राजाओं ने इस अवसर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का लाभ लेना चाहा। वे बिम्बिसार पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे। इधर जनता को जब इसका पता चला तो छोटे-बड़े सभी अपने राजा की रक्षा के लिए चिन्तित हो गए। उन्होंने मिलकर बिम्बिसार से कुशागारपुर लौटने की प्रार्थना की, लेकिन वह नहीं माना। लोगों ने उस परिस्थिति में अपने लोकप्रिय शासक को अकेला छोड़ना उचित नहीं समझा। वे लोग स्वयं राजधानी छोड़कर श्मशान-भूमि में रहने लगे। धीरे-धीरे कुशागारपुर की सारी प्रजा वहीं जाकर बस गई। मृतभूमि जीवित हो गई। शासक के पीछे जनता को इस प्रकार संगठित और सावधान देखकर शत्रुओं ने आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं किया।

यही नया स्थान नया राजगृह नाम से विख्यात हुआ। पटना ज़िले में उसके खंडहर अभी तक मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

११

सिकन्दर और चित्रकार

'असही सही न जात'

सिकन्दर ने एक बार एक नामी चित्रकार से अपने घोड़े का सुन्दर से सुन्दर चित्र बनाने को कहा। चित्रकार ने बड़े परिश्रम से कुछ दिनों में उस घोड़े से ठीक मिलता-जुलता एक चित्र बना दिया। सिकन्दर उसको देखने के लिए एक दिन स्वयं चित्रशाला में आया। वह उस चित्र को देखकर मन ही मन मुग्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो गया। फिर भी उसने खुलकर चित्रकार की प्रशंसा नहीं की।

सिकन्दर अपने को सबसे अधिक चतुर और सर्वज्ञ मानता था। अपनी योग्यता दिखाने के लिए उस चित्र में कोई न कोई दोष दिखाना आवश्यक था। इसलिए उस चित्र की थोड़ी-बहुत प्रशंसा करके वह उसमें मन-माने दोष निकालने लगा। उसे विश्वास था कि चित्रकार उसकी बातों को चुपचाप मान लेगा और उसका सिक्का जम जाएगा।

चित्रकार कुछ देर तक तो 'बड़े आदमी' की बेसिर-पैर की बातों को चुपचाप सुनता और सहता रहा। लेकिन जब उसकी कला पर एकदम कालिख पोती जाने लगी तो उससे न रहा गया। उसने नम्रतापूर्वक सिकन्दर के कहा—श्रीमान, मेरी प्रार्थना है कि आप अपने घोड़े को इसके सामने खड़ा करके तब इसके गुण-दोष की परीक्षा करें।

सिकन्दर ने घोड़े को चित्रशाला में मंगवाया। घोड़ा उस चित्र को देखकर बार-बार हिनहिनाने लगा।

सिकन्दर ने कलाकार से घोड़े के हिनहिनाने का कारण पूछा।

चित्रकार ने कहा—सम्राट आज्ञा हो तो सच्ची

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बात कह दूं ! लेकिन बुरा न मानिए।

सिकन्दर बोला—हां-हां, निश्चिन्त होकर कहो।

चित्रकार ने कहा—आपकी अपेक्षा इस घोड़े को कला का अधिक ज्ञान है। वह सच्चा पारखी है। चित्र के घोड़े को अपने जोड़ का दूसरा घोड़ा समझकर वह उसके साथ दौड़ने के लिए व्यग्र हो गया। यही मेरी कला की सजीवता का प्रमाण है।

सिकन्दर झेंपकर बोला—ठीक है, ठीक है; अब घोड़े और चित्र को आमने-सामने रखकर देखने से मैं भी यह मान गया कि चित्र बहुत अच्छा बना है; असली घोड़े और उसके चित्र में कोई अन्तर ही नहीं जान पड़ता; दोनों में इतनी समानता है कि दूर से दोनों एक ही जाति के जीवित घोड़े जान पड़ते हैं।

यह कहकर सिकन्दर ने उस चित्रकार को यथेष्ट पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१२

चाणक्य और उसकी माता

'वज्र-सा कठोर, फूल-सा कोमल !'

चाणक्य अपने समय का लौहपुरुष था। राजद्रोहियों का दमन करने में उसे कभी दया नहीं आती थी। शासन में वह वज्र की तरह कठोर और हृदयहीन होकर भी अपने व्यक्तिगत जीवन में फूल की तरह कोमल, सरस एवं सहृदय था। राम भी तो ऐसे ही थे। भवभूति ने लिखा है कि राम एक साथ ही वज्र की तरह कठोर और कुसुम के समान मृदु थे—'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।' महापुरुषों की यह भी एक विशेषता है।

हां, तो चाणक्य दिमाग का ही नहीं, दिल का भी बड़ा था। इस सम्बन्ध में उसके जीवन की एक घटना उल्लेखनीय है। चाणक्य जब बड़ा हुआ तो एक दिन उसकी मां उसका मुंह देखकर रोने लगी। बेटे ने इसका कारण पूछा तो वह बोली—बेटा, तुम्हारे भाग्य में राजछत्र धारण करना लिखा है; तुम थोड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ही प्रयत्न करके किसी बड़े राज्य के स्वामी बन जाओगे—इसीको सोचकर मैं रो रही हूं !

चाणक्य ने हंसते हुए पूछा—मां, इसमें रोने की कौन-सी बात है ! तुम्हारे लिए तो यह बड़े हर्ष की बात होनी चाहिए ! सच-सच बताओ, तुम क्यों रोती हो ! मां ने कहा—बेटा ! मैं अपने दुर्भाग्य पर रो रही हूं । अधिकार पाकर लोग अपने सगे-सम्बन्धियों तक की उपेक्षा करने लगते हैं ; तुम भी राजा होते ही भूल जाओगे, 'राजा, जोगी काके मीत !' उस समय तुम मेरे प्रेम को ठुकरा दोगे ; मुझे पूछोगे भी नहीं ; मेरा लाल मेरे हाथों से निकल जाएगा। यही सोचकर रोती हूं ।

चाणक्य ने फिर पूछा—मां, तुमने कैसे जाना कि मेरे भाग्य में राजा होना लिखा है ?

माता ने कहा—बेटा, तुम्हारे सामने के दोनों दांतों से पता चलता है कि तुम राज-वैभव का भोग करोगे । सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऐसे दांतोंवाला मनुष्य राजा होता है ।

चाणक्य ने उसी समय एक पत्थर से अपने दोनों दांतों को तोड़ डाला और उन्हें फेंककर मां से कहा—मां, अब तुम निश्चिन्त हो जाओ ; अब मैं राजा नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बन सकता ; इसलिए सदा तुम्हारे पास ही रहूंगा।

बेटे का यह अद्भुत कर्म देखकर मां चकित हो गई। वह अपने आंचल से उसका रक्त पोंछती हुई बोली—चाणक्य, तूने यह क्या किया ?

चाणक्य ने सहज भाव से कहा—मां, तुम्हारी ममता के आगे मैं संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु को भी तुच्छ मानता हूं। मेरी दृष्टि में वह इन दांतों से और राज्य से कहीं अधिक मूल्यवान है।

माता ने प्रेम से गद्गद होकर पुत्र को गले से लगा लिया। उस दिन से चाणक्य खण्डदन्त के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१३

बादशाह महमूद और गुलाम

'साहब तें सेवक बड़ो...'

बगदाद का बादशाह महमूद अपने अयाज़ नामक गुलाम को बहुत मानता था। उसका यह मान-दान अन्य राजसेवकों को खलता था। छोटे-बड़े सभी राजकर्मचारी अयाज़ से मन ही मन जलते थे और उसके विरुद्ध बादशाह के कान भरा करते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक दिन महमूद अपने शाही बाग में टहल रहा था। वहां से थोड़ी दूर पर सौदागरों का एक दल डेरा डाले पड़ा था। महमूद ने उसको देखकर अपने एक दरबारी से कहा—जाकर पूछो तो यह काफिला कहां से आया है।

दरबारी थोड़ी ही देर में पता लगाकर लौटा और बोला—हुज़ूर, यह मदीने की ओर से आया है।

बादशाह ने पूछा—और जाएगा कहां ?

दरबारी ने हकलाते हुए कहा—जहांपनाह, यह तो मैंने नहीं पूछा।

इसके बाद बादशाह ने अयाज़ को बुलाकर कहा—अयाज़ ! जाकर पता तो लगाओ कि यह क़ाफिला कहां से आया है।

अयाज़ दौड़ता हुआ सौदागर के पास गया और थोड़ी ही देर में वापस आकर बोला—हुज़ूर, यह मदीने की ओर से आ रहा है।

बादशाह ने दुबारा पूछा—और यह जा कहां रहा है ?

अयाज़ ने कहा—यों ही घूमते-घूमते अंगोरा की ओर जाएगा।

बादशाह ने उस यात्री-दल के सम्बन्ध में और भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कई प्रश्न किए। अयाज़ ने सब बातों का उत्तर दे दिया। उसने सौदागरों से उनके बारे में बहुत कुछ पूछ लिया था।

अयाज़ के उत्तरों से सन्तुष्ट होकर बादशाह ने उसके निन्दकों से कहा—अब तुम लोग समझ गए होंगे कि मैं अयाज़ को क्यों इतना अधिक मानता हूं; उसे जो भी काम सौंपा जाता है, उसको वह होशियारी से करता है। तुम लोगों की अपेक्षा वह अधिक गुणी और विश्वासपात्र है; इसीलिए मैं उसको सबसे अधिक चाहता हूं।

महमूद का कहना सही था। क्योंकि मनुष्य का मान उसके गुणों से ही बढ़ता है—'गुणाः पूजास्थानं,' गुण-हीन को कोई नहीं पूछता—'गुन के गाहक सहस नर बिन गुन लहै न कोय।' और 'साहब तें सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१४

स्पार्टा का डिक्टेटर और एक युवक

'आप भला तो जग भला'

लाइकरगस स्पार्टा (यूनान) का पहला डिक्टेटर था। उसीने पहले-पहल स्पार्टा का एक ऐसा शासन-विधान बनाया था, जिसमें राज्य के सभी व्यक्तियों को समान अधिकार दिए गए थे। लाइकरगस के मत से सारी सम्पत्ति राज्य की थी, इसलिए किसीको पूंजीपति होने का अधिकार नहीं था। लाइकरगस अमीर-गरीब के भेद-भाव को मिटाकर उन्हें एक स्तर पर लाना चाहता था। रईसों की झूठी शान-शौकत उसे प्रिय नहीं थी। उन्हें ठीक रास्ते पर लाने के लिए, उसके दिमाग को आसमान से ज़मीन पर लाने के लिए, उसने कई कठोर नियम बनाए थे। उनमें एक यह भी था कि अमीरों को सार्वजनिक भोजनालयों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में गरीबों के साथ एक ही मेज़ पर बैठकर खाना होगा।

धनिकों के लिए यह अपमान की बात थी। उन्होंने मिलकर लाइकरगस का घोर विरोध किया। एक दिन जब वह राज्य-सभा में जा रहा था तो उन्होंने उसे घेर लिया। चारों ओर से लोग उसपर पत्थर फेंकने लगे। लाइकरगस प्राण बचाने के लिए एक मन्दिर की ओर भागा। एक युवक ने वहां भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। लाइकरगस ने जैसे ही मुड़कर उसे देखा, उसने अपनी छड़ी से उसकी एक आंख फोड़ दी। अपना काम करके वह वहां से भाग गया।

लाइकरगस को असह्य पीड़ा हुई, उसका सारा चेहरा खून से रंग उठा, लेकिन उसने युवक को कुछ नहीं कहा। वह उसी हालत में उत्तेजित भीड़ के आगे जाकर खड़ा हो गया। लोग अपनी उत्तेजना का यह दुष्परिणाम देखकर बहुत दुःखी और लज्जित हुए। उन्होंने शोक प्रकट करते हुए इसके लिए उससे क्षमा मांगी और उस युवक को पकड़कर दंड देने के लिए लाइकरगस के हवाले कर दिया। इसके बाद वे उसे उसके घर तक पहुंचाने भी गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लाइकरगस ने घर पहुंचकर उस युवक के अतिरिक्त अन्य सबको धन्यवाद सहित विदा कर दिया। वह युवक चेहरे से बहुत सौम्य, शान्त और भला आदमी जान पड़ता था। दूसरों के बहकाने से ही वह बिगड़ गया था। लाइकरगस ने बड़े प्रेम से उसे अपने घर में अपना विश्वासपात्र सेवक बनाकर रख लिया। यद्यपि उस युवक ने बड़ी दुष्टता की थी, फिर भी लाइकरगस ने अपने वचन-व्यवहार से उसके प्रति किसी तरह की घृणा या कठोरता नहीं दिखाई। वह उसके सुख-सम्मान का पूरा ध्यान रखता था। युवक भी उसके सद्व्यवहार से प्रभावित होकर तन-मन से उसकी सेवा करने लगा। धीरे-धीरे लाइकरगस के लिए उसके मन में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उसे अनुभव हो गया कि लाइकरगस को धनी लोग जैसा बुरा समझते हैं, वह वैसा नहीं; वह कठोर शासक होकर भी स्वभाव से नम्र और सज्जन है; अपना एक-एक क्षण वह राष्ट्र की भलाई सोचने या जनता की सेवा में लगाता है। ऐसे व्यक्ति का उसने जो अहित किया था, उसे सोच-सोचकर वह पछताने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वही युवक जिसने लाइकरगस की आंख फोड़ी थी, उसका भक्त और प्रशंसक बन गया । वह सबके आगे अपने मुख से अपनी निंदा करके उस जन-नायक का गुणगान करने लगा । इस प्रकार एक बिगड़ा हुआ युवक सुधर गया और अपने किए का दंड भी पा गया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१५

सोलन और थेल्स

परिवार का सुख

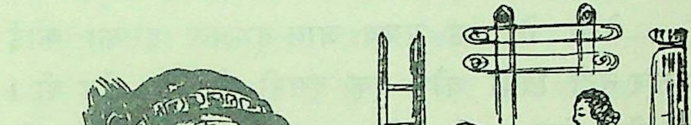

ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व एथेन्स (यूनान) में सोलन नाम का एक धुरन्धर विद्वान रहता था। एक बार वह यात्रा करने निकला। वहां उस समय के नामी दार्शनिक थेल्स से उसकी भेंट हुई। थेल्स ने उसको बड़े आदर से अपने घर में ठहराया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक दिन बातों-बातों में सोलन ने थेल्स के निजी जीवन की चर्चा छेड़ते हुए कहा—मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि आपने अभी तक विवाह करके अपना घर नहीं बसाया ; आप इस तरह अकेले क्यों रहते हैं ? क्या स्त्री-बच्चे के साथ रहना आपको प्रिय नहीं है ?

थेल्स ने उस समय जान-बूझकर इसका कोई उत्तर नहीं दिया और एक दूसरी ही बात छेड़ दी। दो-तीन दिन बाद उसने एक आदमी को सोलन के सामने कुछ कहने के लिए सिखा-पढ़ाकर ठीक किया। उस आदमी ने सोलन को सुनाकर किसीसे कहा—भाई, मैं तो अभी दस दिन हुए एथेन्स से लौटकर आया हूं...।

अपने देश का नाम सुनते ही सोलन का ध्यान उस अपरिचित व्यक्ति की ओर खिंच गया। वह उससे वहां का हाल-चाल पूछने लगा। उस आदमी ने कहा—वहां इधर कोई खास बात तो नहीं हुई ; हां, एक नवयुवक की बड़ी ही दुःखदायी मृत्यु अवश्य हुई... सारा नगर उसके लिए शोक मना रहा था...मैंने देखा कि एथेन्स का एक-एक बच्चा उसके शव के पीछे रोता हुआ जा रहा था...पूछने पर पता चला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि वह वहां के किसी लोकप्रिय विद्वान का इकलौता लड़का था...बड़ा ही होनहार युवक था...बेचारा मरते समय अपने बाप का मुंह भी नहीं देख पाया, क्योंकि बाप कहीं बाहर गया था...इससे लोग और भी दुःखी थे कि उसका बाप लौटकर जब अपने बेटे को न पाएगा तो उसकी क्या हालत होगी...।

सोलन ने भी शोक प्रकट करते हुए कहा—सचमुच बड़े दुःख की बात है ; बेचारे बाप की छाती इसको सुनकर फट जाएगी । अच्छा, उसका नाम तो बताओ ।

उस आदमी ने कुछ देर तक सोच-विचार कर कहा—नाम तो याद था, लेकिन इस समय भूल गया हूं । इतना ही याद है कि वह राजनीति, दर्शन-शास्त्र का बहुत बड़ा पंडित है और देश-विदेश में उसका बड़ा आदर है ।

उसकी प्रत्येक बात से सोलन के मन में शंका बढ़ती जा रही थी । उसने फिर पूछा—तुमने इस सिलसिले में कहीं सोलन का नाम तो नहीं सुना ?

उस आदमी ने कहा—ठीक-ठीक ; यही नाम मुझे याद नहीं आ रहा था । उस मरनेवाले युवक के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बाप का नाम सोलन था। लोग बार-बार सोलन को ही याद कर रहे थे।

इसको सुनते ही महापंडित सोलन साधारण आदमियों की तरह सिर पीट-पीटकर रोने लगा। उसे शोक से अत्यन्त विकल देखकर थेल्स ने मुस्कराते हुए कहा—जिन चीज़ों से सोलन जैसे धीर-गंभीर ज्ञानी का भी चित्त इस तरह मोह-शोक से व्याकुल हो गया, उनसे साधारण आदमियों की क्या दशा होती होगी—यही सोचकर तो मैं अकेले रहना पसन्द करता हूं; विवाह करके स्त्री-बच्चों के साथ रहूं तो उनके पीछे मुझे भी इसी तरह छटपटाना पड़ेगा।

यह कहकर उसने सोलन से कहा—मित्र, अब शोक न करो; जो कुछ तुमने सुना है, सब झूठ है। तुम्हें उस दिन के प्रश्न का उत्तर देने के लिए ही मैंने इस नाटक का आयोजन किया था। अब तुम समझ गए होगे कि परिवार के झंझट से मैं क्यों दूर भागता हूं।

इसको सुनकर सोलन की जान में जान आई। उसने स्वस्थचित्त होकर कहा—थेल्स, इस समय तुम जो चाहो कह लो, लेकिन सत्य यह है कि बिना परिवार के कोई भी आदमी सुखी नहीं रह सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसे दुःख तो आते-जाते ही रहते हैं। इनका ख्याल करके परिवार से भागना मूर्खता है। ईश्वर ने आदमी को इस ढंग से बनाया है कि वह कभी अकेले नहीं रह सकता ; उसका हृदय किसी न किसीको अपनाने के लिए व्याकुल रहता है। अकेले रहने से उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। उसका जीवन सूना-सा लगता है। इसलिए दुःख झेलते हुए भी प्रियजनों के बीच में रहना आवश्यक है।

उस समय तो थेल्स ने इसको नहीं माना ; लेकिन आगे चलकर उसने अनुभव किया कि सोलन ने ठीक कहा था। जिस मोह-शोक से बचने के लिए वह अकेला रहता था, उससे वह नहीं बच पाया, क्योंकि मित्रों और सगे-सम्बन्धियों के बन्धन में तो वह जकड़ा ही था और एक दिन ऐसा आया कि वह अपने को बिलकुल अकेला पाकर दुनिया से घबड़ाने लगा। कोई ऐसा नहीं था, जिसे वह अपना कहता, जिसके साथ वह प्यार से बातें करता और जिसके प्रति अपने हृदय का सारा प्रेम उंडेल देता। उसे अपना जीवन नीरस और निरर्थक-सा लगने लगा। बुढ़ापे में उसने अपने भानजे को गोद लेकर जीवन की यह लालसा पूरी की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१६

सिकन्दर और तक्षशिला-नरेश

'जो गुड़ दीने ही मरै...'

सिकन्दर के आक्रमण के समय तक्षशिला एक बहुत बड़ा स्वाधीन राज्य था। वहां का शासक आक्रमणकारियों से लोहा लेने में सब प्रकार से समर्थ था। उसके पास सैनिक बल ही नहीं, बुद्धिबल भी था। उसने पहले बुद्धिबल का ही सहारा लिया।

सिकन्दर जब अपनी विशाल सेना के साथ उस राज्य की सीमा पर पहुंचा तो नीति-निपुण तक्षशिला-नरेश ने अकेले आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। वह शत्रु के आगे आत्मसमर्पण करने नहीं, बल्कि उसको सुबुद्धि देने गया। सिकन्दर तो अपना परम शत्रु मानकर धूमधाम से धावा करना चाहता था, लेकिन उसने यकायक सामने पहुंचकर मित्रता के लिए हाथ बढ़ा दिया और कहा—वीरवर सिकन्दर ! हम लोग क्यों लड़ें ! आप हमसे हमारा अन्न-जल छीनने तो आए नहीं हैं, इसलिए हम आपके विरुद्ध किस बात के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिए हथियार उठाएं ! यदि सोने-चांदी और ज़मीन-जायदाद का झगड़ा हो तो उसके लिए भी आपस में समझौता हो सकता है—यदि मेरे पास आपसे अधिक सम्पत्ति निकले तो मैं उसमें से आपको देने के लिए सहर्ष तैयार हूं और यदि मेरे पास कम है तो मुझे आपसे लेने में कोई आपत्ति न होगी। इस तरह आपस में लड़ाई का कोई कारण नहीं रह जाता। हम लोग मिल-जुलकर सारे मामले को तय कर लें तो दोनों ही लाभ में रहेंगे। इसके लिए व्यर्थ में शत्रुता करना और असंख्य प्राणियों का रक्त बहाना हमारे-आपके लिए शोभा की बात न होगी। यदि आप मेरे इस प्रस्ताव को नहीं मानते तो मुझे विवश होकर आपसे युद्ध करना ही पड़ेगा।

सिकन्दर तक्षशिला-नरेश के वचन-व्यवहार से बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने भी मित्रता के लिए तुरन्त अपना हाथ बढ़ा दिया और कहा—तक्षशिला-नरेश ! आपके इस सभ्यतापूर्ण व्यवहार के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। लेकिन यदि आप यह सोचते हों कि इन बातों से आपने बिना लड़े ही मुझे मैदान से भगा दिया है तो यह आपका भ्रम है। मैं तो अंत तक डटकर आपका सामना करूंगा और आपको हराकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ही छोड़ूंगा। आप हथियारों से नहीं, बल्कि भलमंसाहत से मुझे जीतना चाहते हैं। भलमंसाहत में भी मैं आपसे कम नहीं हूं, यह अच्छी तरह साबित हो जाएगा। पहले आप अपने हृदय की विशालता का परिचय दीजिए, उसके बाद मैं दूंगा। अभी हार-जीत का निर्णय हो जाएगा।

तक्षशिला-नरेश ने उसी समय सिकन्दर को लाखों रुपये की सम्पत्ति भेंट करके उसका यथोचित सत्कार किया। उसके बदले में सिकन्दर ने तक्षशिला-नरेश को उससे दूनी सम्पत्ति देकर अपना बड़प्पन सिद्ध कर दिया। उसके साथियों को शत्रु का ऐसा मान-दान बहुत अप्रिय लगा, परन्तु सिकन्दर ने इसीमें अपनी जीत समझी। वह किसी भी बात में दूसरों से पिछड़ना नहीं चाहता था। उसने हृदय से तक्षशिला-नरेश को अपना मित्र मान लिया और उसके राज्य पर आक्रमण करने का विचार ही त्याग दिया।

तक्षशिला के चतुर शासक की नीति यही थी—'जो गुड़ दीने ही मरै, क्यों विष दीजै ताहि।' इसके द्वारा राज्य के सिर से एक बहुत बड़ी विपत्ति टल गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१७

औरंगजेब और मुल्ला सालह

शिक्षक की भूल

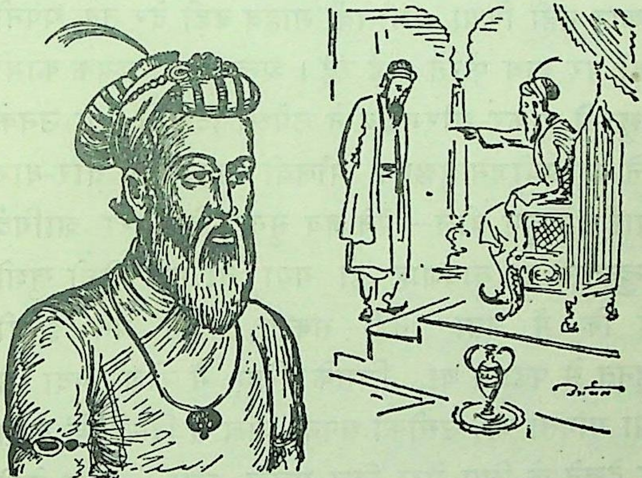

औरंगज़ेब के बादशाह होने की खबर पाकर उसके गुरु मुल्ला सालह खुशी के मारे उछल पड़े। उन्हें ऐसा लगा मानो दिल्ली की बादशाहत उनके पैरों तले आ गई। वे फौरन अचकन-पगड़ी पहनकर अकड़ते हुए शाही दरबार की ओर चल पड़े। उन्हें विश्वास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

था कि औरंगज़ेब भरे दरबार में उनका स्वागत-सत्कार करेगा, उन्हें ऊंचे से ऊंचे आसन पर बिठाएगा और खूब धन-दौलत देकर विदा करेगा।

मन ही मन हवाई किले बनाते हुए मौलवी साहब औरंगज़ेब के दरबार में पहुंच गए। औरंगज़ेब ने उनकी ओर देखा तो सही, लेकिन किसी प्रकार का आदर-सत्कार नहीं किया। मौलवी साहब बड़ी देर तक अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते खड़े रहे। अन्त में आवश्यक कामों से छुट्टी पाकर औरंगज़ेब ने उपेक्षा दिखाते हुए उनके आने का प्रयोजन पूछा। मौलवी साहब उसे बार-बार बधाई देते हुए बोले—मैंने जब सुना कि मेरा शागिर्द हिन्दुस्तान का बादशाह हो गया तो मुझे ऐसी खुशी हुई कि मैं बता नहीं सकता, जिसे मैंने इतनी मेहनत से पढ़ाया था, जिसके लिए मैं रोज़ खुदा से दुआ मांगता था, उसीको अपनी आंख से दिल्ली कें तख्त पर देखने के लिए मेरा दिल मचल उठा। आज मेरी सोई हुई किस्मत जग गई है; अब तो मेरी यही ख्वाहिश है कि मैं दिन-रात तुम्हारे पास रहूं और तुम्हें रोज़ दिल से दुआ देता रहूं। मेरी नसीहतों को तुम भूले न होगे···आदि-आदि !

औरंगज़ेब समझ गया कि मुल्लाजी मान-दान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के लोभ से दौड़े आए हैं। उसने उन्हें बीच ही में रोक-कर कहा—मुल्लाजी ! आप साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि आप ऊंचे ओहदे और इनाम के लालच से आए हैं। मैं आपकी चिकनी-चुपड़ी बातों में नहीं आ सकता। आपने मेरे साथ कौन-सा एहसान किया है, जिसके बदले में मैं आज आपका कुछ भला करूं ! आपने मुझे बनाया नहीं, बिगाड़ा ही है। इसलिए मैं तो आपकी शक्ल भी नहीं देखना चाहता ···।

मुल्लाजी को काटो तो लहू नहीं। सिर मुड़ाते ही उनके ऊपर ओले पड़ने लगे। वे पता नहीं किस बदनसीब का मुंह देखकर घर से निकले थे। सोचने पर भी उसका नाम नहीं याद आता था। बेचारे सिटपिटाकर खड़े के खड़े ही रहे। जिस चेले से वे इतनी उम्मीद करके आए थे, वही दरबार में सबके आगे उनकी इज़्ज़त उतारने लगा। औरंगज़ेब उनके लिए घृणा और क्षोभ प्रकट करके बिना रुके कहता गया—आप मुझे कोई उपयोगी शिक्षा देते तो मैं आज आपका आदर-सत्कार करने में न चूकता। आप तो मुझे गलत और बे सिर-पैर की बातें ही बताते रहे। आपने मुझे बताया था कि योरुप एक छोटा-सा द्वीप है। और वहां का सबसे शक्तिशाली राज्य पुर्तगाल है। आप मुझे यही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सिखाते रहे कि मेरे बाप-दादे ही दुनिया में सबसे अधिक शक्तिशाली और नामी हुए हैं—उनके आगे फारस, मिश्र, चीन आदि के बादशाह दो कौड़ी के थे। ऐसी झूठी-मूठी खुशामद-भरी बातों से आपने मेरा दिमाग क्यों खराब किया ? क्या यह आपका कर्तव्य नहीं था कि आप मुझे हर एक बात की ठीक-ठीक जानकारी कराते ? उचित यह था कि आप मुझे प्रत्येक देश की शासन-प्रणाली, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक नीति के विषय में आवश्यक बातें बताते, उनकी उन्नति-अवनति का रहस्य समझाते और मुझे सही-सही रास्ता दिखाते, लेकिन आपने यह सब कुछ नहीं किया। मुझे अंधेरे में रखकर आप बस मेरे पुरखों का गुण गाते रहे...

आपने मेरी ज़िन्दगी का कितना अमूल्य समय नष्ट किया है मुल्ला साहब ! मुझे आपने मनुष्य बनाना नहीं सिखाया, शिष्टाचार-सद्व्यवहार का आवश्यक ज्ञान नहीं कराया, राजनीति, युद्ध-धर्म-नीति की शिक्षा नहीं दी। आप तो मुझे अरबी के कठिन शब्द और व्याकरण रटाते रहे। वह सब किसी मुल्ला के काम आ सकता है, मेरे तो किसी काम का नहीं है। कितनी ही व्यर्थ की बातों को आप ठूंस-ठूंसकर मेरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिमाग में भरते रहे। उनसे मेरी बुद्धि जड़ हो गई है। इसके लिए मैं आपका क्या उपकार मानूं ! आज तो मैं सोचता हूं कि मुझे भी अरस्तू जैसा गुरु मिला होता तो मैं भी सिकन्दर जैसा महान होता। ऐसे गुरु का मैं जीवन-भर कृतज्ञ रहता। लेकिन मुल्ला साहब ! आप जैसे अयोग्य शिक्षक का आदर मैं नहीं करूंगा। आपने मेरे साथ विश्वासघात किया है। अब आप चुपचाप यहां से चले जाइए। और अपने गांव-घर में मुंह छिपाकर बैठिए, कभी भूल कर भी किसी-से अपने को मेरा गुरु न कहिएगा।

मौलवी साहब क्षण-क्षण पर सूखते जा रहे थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था मानो कोई उनके सिर पर उन्हींकी जूती से मार रहा है। उन्हें अपने कार्यों का पूरा दंड मिल गया। यदि उन्होंने औरंगज़ेब को अच्छी शिक्षा दी होती तो वह अपने गुरु के प्रति अशिष्टता, असहिष्णुता क्यों दिखाता ! अपनी शिक्षा से वे उसे एक सभ्य आदमी भी तो नहीं बना पाए थे ! इसलिए उससे सद्व्यवहार की आशा करना व्यर्थ था।

इस तरह अपमानित और निराश होकर मुल्ला सालह अपने घर लौट आए। फिर कभी वे औरंगज़ेब को अपना मुंह दिखाने नहीं गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१८

प्लेटो

'कथनी तें करनी कठिन'

यूनान के महान दार्शनिक प्लेटो ने आदर्श राज्य की एक सुन्दर योजना बनाई थी। उनका कहना था कि यदि शासक लोग उनके बताए हुए सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करें तो उनका राज्य स्वर्ग जैसा बन सकता है। वे स्वयं उन सिद्धान्तों का प्रयोग करने के लिए व्यग्र थे। इसके लिए उन्होंने अपने समय के कई शासकों से आग्रह किया, परन्तु कोई भी तैयार नहीं हुआ।

बहुत प्रयत्न करने के बाद प्लेटो को मनचाहा मौका मिल ही गया। सिराकूज़ के शासक डायोनिसीज़ को वे अपनी राजविद्या सिखाने गए। उनकी बड़ी-बड़ी बातों को सुनकर डायोनिसीज़ ने उन्हें अपना राजगुरु मान लिया और उनसे प्रार्थना की कि आप जैसा कहते हैं, वैसा ही करके भी दिखा दें।

पंडितराज प्लेटो इसके लिए तैयार हो गए। डायोनिसीज़ ने सारा राज्य-प्रबन्ध उनके हाथों में सौंप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिया। प्लेटो अपनी क्रान्तिकारी योजना के अनुसार शासन को सुधारने में लग गए। अपने ऊंचे-ऊंचे सिद्धान्तों को उन्होंने जनता के सिर पर लाद दिया। कठोर राजनियमों से लोग इस तरह जकड़ उठे कि उनका आगे बढ़ना असंभव हो गया। दीन-दुर्बल प्राणी उस भारी योजना से दबकर कराहने लगे। प्लेटो के विचार बहुत ऊंचे और बहुत अच्छे थे, लेकिन उन्हें व्यवहार में लाना कठिन था। साधारण मनुष्य को कोई आकाश के तारे तोड़ने को विवश करे तो वह बेचारा कैसे तोड़ेगा।

लाख प्रयत्न करके भी प्लेटो अपनी कल्पित योजना को सफल नहीं बना सके। राज्य की जमी-जमाई व्यवस्था गड़बड़ हो गई। राजा-प्रजा की उन्नति तो दूर रही, उलटे दिन-प्रतिदिन अवनति होने लगी। प्लेटो की अनुभव-हीनता से अपने राज्य को चौपट होते देखकर डायोनिसीज़ बहुत रुष्ट हुआ। उसने सारा राज्य-प्रबन्ध प्लेटो के हाथ से छीनकर उन्हें जेल में बन्द कर दिया। दार्शनिक-सम्राट को इसका अनुभव हो गया कि केवल बढ़िया योजना बनाने से काम नहीं चलता; मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा करके दिखाना कठिन है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

डायोनिसीज़ ने प्लेटो को मृत्युदण्ड देने का निश्चय कर लिया था, लेकिन कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के कहने से वह रुक गया। एक धनी आदमी को अपने बच्चों के लिए एक गुलाम शिक्षक की आवश्यकता थी। राजा ने प्लेटो को उसीके हाथ बेच दिया।

इस प्रकार प्लेटो को जीवन-दान तो मिल गया लेकिन उनकी स्वतन्त्रता छिन गई। वे रईस की गुलामी बजाने लगे। उनके सौभाग्य से उनका स्वामी विद्या-प्रेमी और उदार था। उनकी योग्यता पर मुग्ध होकर उसने उन्हें दासता के बन्धन से मुक्त करके एथेन्स लौट जाने की स्वीकृति दे दी।

प्लेटो महासंकट से छुटकारा पाकर फिर अपने घर लौट आए और पहले की तरह अपने काम में तन्मय हो गए। कुछ दिनों बाद उन्हें सिराकूज़ के शासक का एक पत्र मिला। उसमें उसने अपने दुर्व्यवहार के लिए खेद प्रकट करते हुए प्लेटो से क्षमा मांगी थी। प्लेटो ने अपने मित्रों के आगे उसको पढ़ा और राजदूत को यह कहकर वापस कर दिया—मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं अपना महत्त्वपूर्ण कार्य, तत्त्वचिन्ता—छोड़कर डायोनिसीज़ की छोटी-मोटी बातों की ओर ध्यान दूं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१६

गुरु अर्जुनदेव

'लघुता तें प्रभुता मिलै'

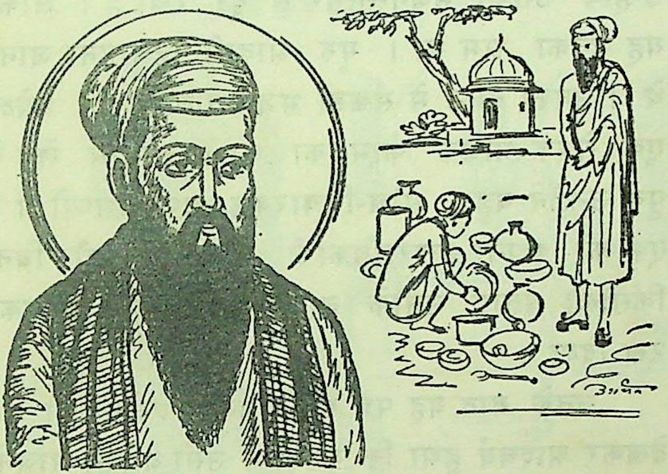

सिक्खों के नामी गुरु अर्जुनदेव जब पहले-पहल अखाड़े में शामिल हुए तो उनके गुरु ने उन्हें जूठे बरतन साफ करने का काम सौंपा। अर्जुनदेव बड़ी खुशी से सबके बरतन मांजने लगे। अन्य शिष्य तो गुरुजी के पास बैठकर भजन गाते और सत्संग का आनन्द लेते थे, लेकिन वे बेचारे बड़े सवेरे से लेकर नित्य आधी रात तक इसी काम में लगे रहते। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कभी चाकरी के कष्ट और अपमान को मन पर नहीं आने दिया।

लोग तो यही समझते थे कि गुरुजी अन्य चेलों के सामने अर्जुनदेव को तुच्छ समझते हैं, इसलिए उन्होंने उसको भजन-सत्संग से दूर रखा है। लेकिन यह उनका भ्रम था। गुरु आदमी पहचानना जानते थे। उनकी दृष्टि में सैकड़ों भजनानन्दियों की अपेक्षा एक सेवक अधिक काम का था। समाधि लेने के पूर्व उन्होंने बहुत सोच-विचारकर अपने शिष्यों में से एक को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया और बिना किसीको बताए उसीके नाम अधिकार-पत्र लिखकर रख दिया।

उनके बाद वह पत्र खोला गया। लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि गुरुजी ने उसी बरतन मांजने-वाले शिष्य को अपनी गद्दी सौंपी थी। सिक्खों ने अर्जुनदेव को अपना पांचवां गुरु मान लिया।

कबीर ने ठीक ही कहा है:

"लघुता तें प्रभुता मिलै, प्रभुता तें प्रभु दूरि।" और गुरु नानक ने भी बड़े अनुभव की बात कही है:

"नानक नन्हें ह्वै रहो, जैसी नन्हीं दूब।
घास-पात सब जरि गए दूब खूब की खूब॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२०

खलीफा उमर

सादगी और सचाई का नमूना

मुसलमानों के दूसरे खलीफा हज़रत उमर अपने समय के नामी शूरमा और सुयोग्य शासक थे। इस्लाम धर्म को फैलाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। उन्होंने अपने शासन-काल में लगभग चालीस हज़ार किले जीते थे। मुसलमानी साम्राज्य के वही सर्वे-सर्वा थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इतने शक्तिशाली और प्रभावशाली होकर भी उमर बहुत सादगी का जीवन बिताते थे। साम्राज्य के प्रधान होकर भी वे केवल बीस रुपये मासिक वेतन लेते थे और उसीमें अपने घर का सारा खर्च चलाते थे। उनका रहन-सहन एक गरीब मज़दूर जैसा था। वे फटे-पुराने कपड़े अपने हाथ से सीकर पहनते थे और रूखा-सूखा खाकर चटाई पर सो रहते थे। उनके बाल-बच्चे अच्छे खाने और बढ़िया कपड़ों के लिए तरसते थे। उमर कहां से लाते ! वे तो खज़ाने से तनख्वाह के अलावा एक पैसा लेना भी हराम समझते थे।

एक बार उनके बड़े लड़के का कुरता बहुत पुराना होकर बुरी तरह फट गया था। उमर कई महीनों से इस फिक्र में थे कि तनख्वाह से कुछ पैसे बचें तो उसके लिए एक नया कुरता सिलवा दें। एक दिन लड़का बाप को अपना फटा कुरता दिखाकर रोने लगा। उमर को बड़ी दया आई। उनके पास पैसे नहीं थे, इसलिए उन्होंने तुरन्त अपने अगले महीने के वेतन से दो रुपये पेशगी देने के लिए खज़ानची को एक रुक्का भेजा।

जैसे खलीफा थे, वैसे ही उनके कर्मचारी भी थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहा भी है—'मालिक को गोत, गोत होत है गुलाम को।' खज़ानची ने अपने प्रधान को भी पेशगी रुपये देना उचित नहीं समझा। उसने रुक्के पर यह लिखकर उसे वापस कर दिया—श्रीमन्, किसीकी ज़िन्दगी का क्या भरोसा! और फिर आप तो हमेशा जान को हथेली पर रखकर शत्रुओं से भिड़े रहते हैं; ईश्वर न करे, यदि कल आप न रहें तो ये पेशगी रुपये कहां से वसूल होंगे? मैं इनको किस हिसाब में डालूंगा? आप खुद भी कर्ज़दार होकर मरना पसन्द न करेंगे। इसलिए मैं सरकारी खज़ाने से कुछ भी पेशगी नहीं दे सकता। यह नियम के विरुद्ध है, अतएव आशा है इसके लिए आप मेरे ऊपर अनुचित दबाव न डालेंगे।

इस खरे जवाब से हज़रत उमर चिढ़े नहीं, उलटे प्रसन्न ही हुए। कर्तव्य-पालन में वे ऐसी ही दृढ़ता और सचाई पसन्द करते थे। अपने प्यारे बेटे की दुर्दशा पर उन्हें दुःख तो हुआ ही, लेकिन वे लाचार थे। उन्होंने उससे वादा कर लिया कि दूसरे महीने का वेतन मिलते ही वे उसके लिए एक कुरता अवश्य बनवा देंगे। अगले महीने उन्होंने किसी तरह घर के खर्चे समेटकर उसके लिए एक कुरता बनवा दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तब तक खलीफा का बेटा चिथड़े लपेटे घूमता रहा।

बाद में उसी बेटे के दुराचार का मामला उनके सामने आया। उस समय उमर यह भूल गए कि वे उसके बाप हैं। उसके साथ उन्होंने किसी भी तरह का पक्षपात नहीं दिखाया। उस प्यारे बेटे को वे न्याय के अनुसार कठोर से कठोर दंड देने में नहीं चूके। उसको उन्होंने बेंतों से इतना पिटवाया कि वह मर गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२१

तुलसीदास

'घर का ब्राह्मण बैल बराबर'

एक बार गोस्वामी तुलसीदास काशी के विद्वानों के बीच में बैठकर अपने श्रीमुख से रामचरितमानस की कथा सुना रहे थे। आसपास श्रोताओं की मंडली जमा थी। उसी समय दो देहाती भी वहां आकर खड़े हो गए। वे गंगा-स्नान करने आए थे; वहां भीड़ देखकरके रुक गए।

उनमें से एक थोड़ी देर तक गोस्वामी तुलसीदास की ओर ध्यान से देखते-देखते उन्हें पहचान गया। तुलसीदास उन्हींके गांव के निवासी थे और बचपन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में उनके साथ गाय-भैंस चराते थे। उन्हें इस रूप में तिलक लगाए, माला पहने, उच्च आसन पर विराजमान देखकर उसे बड़ा कौतूहल हुआ। वह अपने साथी से बोला—अरे भैया, देखते हो, तुलसिया तो यहां महन्त बना बैठा है।

दूसरे ने भी पहचानकर कहा—हां यार! इसने तो अच्छा ढोंग रचा है; पूरा बहुरूपिया है।

बेचारे गंवार यह नहीं जानते थे कि उनका, बचपन का सखा, गरीब तुलसिया अपने परिश्रम से सचमुच एक महापुरुष और देश का सर्वमान्य कवि बन गया है। वे लोग तो उन्हें पूरा पाखंडी मानकर उनका मज़ाक उड़ाने लगे।

तुलसीदासजी जब कथा समाप्त करके उठे तो उन दोनों ने लपककर उन्हें पकड़ लिया और कहा—अरे तुलसिया, यह क्या भेस बना रखा है? तू तो भाई, नम्बरी धूर्त निकला। तुलसीदास क्या उत्तर देते। उनके मुख से यही दोहा निकल पड़ा :

"तुलसी वहां न जाइए,
जन्मभूमि के ठाम।
गुण-अवगुण चीन्हें नहीं,
लेत पुरानो नाम।।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२२

कवि बनारसीदास, सन्त शीतलप्रसाद

धोखे का नाम

आज से बहुत पहले एक बार एक धर्मोपदेशकजी कहीं से घूमते-घामते आगरा पहुंचे और वहीं टिक गए। लोग नित्य उनके सत्संग के लिए जाने लगे। धीरे-धीरे उनकी धूम मच गई।

एक दिन प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास भी उनसे मिलने पहुंचे। उन्होंने उपदेशकजी से कुछ देर तक बातें करके शिष्टतापूर्वक उनका नाम पूछा। उपदेशकजी ने अपना नाम शीतलप्रसाद बताया।

बनारसीदास वहीं बैठकर उनके भजन-उपदेश सुनने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने बड़ी नम्रता से फिर पूछा—महाराज, मैं आपका शुभ नाम भूल गया; कृपया एक बार फिर बता दें। उपदेशकजी ने कुछ रुष्ट होकर अपना नाम दुबारा बता दिया।

बनारसीदास फिर उनका लम्बा-चौड़ा व्याख्यान सुनने में तल्लीन हो गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूछा—महाराज ! आपने अपना नाम क्या बताया था ? मेरा सारा ध्यान आपकी बातों में लगा था, इसलिए मैं उसे भूल गया। कृपा करके फिर बता दें।

इस बार धर्मोपदेशकजी क्रोध से लाल-पीले हो गए और कड़ककर बोले–कान खोलकर अच्छी तरह सुन लो और अच्छी तरह रट लो—मेरा नाम है शीतल-प्रसाद...शीतलप्रसाद...शीतलप्रसाद; अब फिर पूछोगे तो ठीक न होगा।

बनारसीदास तुरन्त वहां से चलने के लिए उठ खड़े हुए।

लोगों ने कहा—बैठिए-बैठिए बनारसीदासजी, महात्मा शीतलप्रसाद का उपदेश थोड़ी देर और सुनिए।

बनारसीदास धीरे से यह कहकर चले गए—भाई ! ये शीतलप्रसाद नहीं, पूरे ज्वालाप्रसाद हैं; इनके पास बैठना ठीक नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२३

तैमूरलंग

दो कौड़ी का आदमी

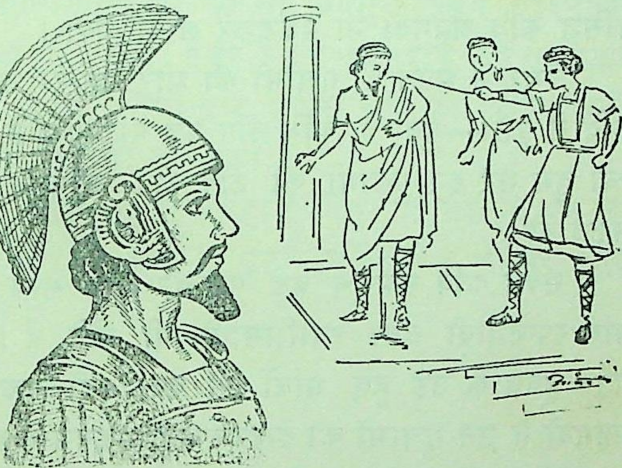

एक समय ऐसा था जब कि सारी दुनिया तैमूर लंग के नाम से कांपती थी। उस लंगड़े, नाटे, महा-कुरूप नर-पिशाच ने कितने ही देशों को रौंद डाला था, कितने ही घरों को बर्बाद कर दिया था। लूट-पाट करना, खून बहाना, बसी-बसाई बस्तियों को उजाड़ देना—यह सब उसके लिए हंसी-मज़ाक था। बगदाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में एक बार उसने एक लाख आदमियों का वध कराके उनकी खोपड़ियों का पहाड़ खड़ा करवाया था। ऐसे क्रूर कराल आदमी का ध्यान आते ही लोग अधमरे हो जाते थे।

एक बार मनुष्यों का यही काल कलेवा करने को बैठा था। बहुत-से बन्दियों के भाग्य या जीवन का निपटारा हो रहा था। उसके सामने तुर्किस्तान का प्रसिद्ध कवि अहमदी भी पकड़कर लाया गया।

तैमूर ने अपने दो गुलामों की ओर इशारा करके कवि से पूछा—सुना है, कवि लोग बड़े पारखी होते हैं; क्या तुम मेरे इन गुलामों की ठीक-ठीक कीमत बता सकते हो?

सच्चे कवि सचमुच बड़े पारखी और साथ ही साथ स्पष्टवादी तथा स्वाभिमानी भी होते हैं। वे अपने हृदय के उठे हुए भावों को दबा नहीं सकते। अहमदी ने उन गुलामों को देखकर कहा—इनमें से कोई चार सौ अशर्फियों से कम कीमत का नहीं है।

इसके बाद तैमूर ने उससे अपनी कीमत पूछी। अहमदी के मुंह से तत्काल निकल गया—चौबीस अशर्फियां।

तैमूर तिलमिलाकर बोला—क्या कहा! चौबीस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अशर्फियां ! इन तुच्छ आदमियों की कीमत चार-चार सौ और मेरी केवल चौबीस अशर्फियां ! इतने की तो मेरी यह कामदार सदरी है !

अहमदी चटपट बोल उठा—बस, वही तो सब कुछ है ; इसलिए मैंने आपकी सही-सही कीमत बताई है।

मतलब यह है कि कवि की दृष्टि में तैमूर का व्यक्तित्व दो कौड़ी का था, क्योंकि उसमें आदमीपन तो था ही नहीं। तैमूर उसके अभिप्राय को समझकर झेंप गया। उसकी दुष्ट आत्मा सत्य का विरोध करने का साहस नहीं कर सकी।

'सांच को आंच कहां ?' तैमूर अहमदी के वध की आज्ञा नहीं दे सका। उसने उसे पागल कहकर छोड़ दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२४

रहीम

दूर से ही नमस्कार

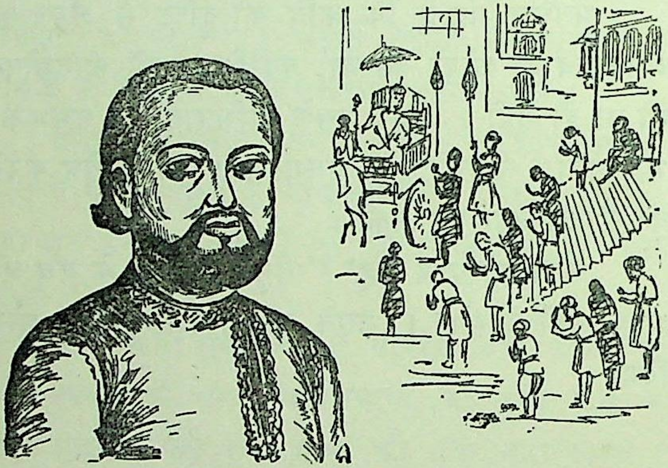

एक बार एक महातिलकधारी पंडित अकबर के महामान्य मंत्री अब्दुल रहीम खानखाना से मिलने गया। उसने द्वारपाल को अपना परिचय देते हुए कहा—मैं एक सिद्ध रसायनी हूं ; लोहे से सोना बनाने की विद्या जानता हूं। परम गुणग्राही धर्ममूर्ति मन्त्री-जी से इस विषय में कुछ गुप्त बातें करना चाहता हूं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

द्वारपाल ने भीतर जाकर रहीम से निवेदन किया कि एक विलक्षण गुणीजी पधारे हैं जो लोहे से सोना बना देते हैं और श्रीमान को कुछ गुप्त बातें बताना चाहते हैं।

रहीम एक क्षण तक मौन रहने के बाद द्वारपाल से बोले—उस धूर्त को अभी बाहर कर दो ; मैं ऐसे दंभियों से नहीं मिलता।

पास बैठे हुए एक मित्र ने कहा—बुलाकर मिल लीजिए ; संभव है, वह सचमुच कोई सिद्ध पुरुष हो।

रहीम हंसकर बोले—यदि वह सचमुच सिद्ध पुरुष होता तो यहां न आता, वह कहीं भी बैठकर मेरे जैसे हज़ारों आदमियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता। यह तो कोई कमंडली है ; पैसा कमाने के लिए इसने सिद्ध रसायनी का भेस बना रखा है। यदि वह सचमुच सोना बनाना जानता होता तो इस तरह मारा-मारा न घूमता। ऐसे कपट मुनियों को दूर से ही नमस्कार करने में कल्याण है। पाखंडी पंडित हाथ मलता हुआ चला गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२५

रणजीतसिंह

'क्षमा बड़न को चाहिए'

पंजाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंह एक बार हाथी पर सैर के लिए निकले थे। रास्ते में एक जगह कुछ लड़के ढेले से पके बेर झोर रहे थे। संयोग से उनका एक ढेला महाराजा रणजीतसिंह को लग गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बेचारे डर से कांपते हुए वहां से भागे, लेकिन पकड़ लिए गए।

महाराजा रणजीतसिंह के पास लौटने पर सिपाहियों ने उन लड़कों को उनके सामने सज़ा देने के लिए पेश किया। महाराजा ने इस मामले में अपने मन्त्रियों की राय पूछी। सबने यही कहा कि दुष्ट लड़कों को कठोर दण्ड मिलना चाहिए। पंजाब-केसरी को चोट लगना कोई साधारण बात थोड़े ही थी!

जिसकी ओर बड़े-बड़े भी आंख उठाकर देख तक नहीं सकते थे, उसीके आगे गरीब लड़के खड़े थर-थर कांप रहे थे। सबकी जान मुसीबत में थी।

मन्त्रियों से सलाह लेने के बाद महाराजा ने कोतवाल से पूछा—ये लोग क्या कर रहे थे?

कोतवाल ने कहा—महाराज, ये लोग पेड़ पर ढेले मार रहे थे।

महाराजा ने फिर पूछा—क्यों, किसलिए?

कोतवाल ने कहा—सरकार, बेरों के लिए।

महाराजा कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोले—पेड़ तो ढेले की चोट खाकर मीठे फल दे, और मैं दंड दूं। मैं मनुष्य होकर क्या उस पेड़ के जितना भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उदार नहीं हो सकता ? इन भोले-भाले बच्चों को छोड़ दो। इन्हें पेट भरकर अच्छे-अच्छे फल खिलाओ। क्योंकि ये बेचारे उसीके लिए तो ढेले मार रहे थे।

उनकी आज्ञा का पालन तुरन्त किया गया। खूब फल खाकर लड़के हंसते-कूदते अपने-अपने घरों को चले गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२६

गालिब

'आखर की गति का खर जानें'

एक बार किसी महाशय ने उर्दू-फारसी का एक साधारण कोश प्रकाशित करके उसका ऐसे विज्ञापन किया कि बहुत-से लोग बिना देखे ही उस पुस्तक की प्रशंसा गाने लगे । उर्दू के प्रसिद्ध कवि गालिब ने भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उस नामी कोश को देखा और उसको देखकर उन्हें बड़ी निराशा हुई। जैसा नाम था, वैसा काम नहीं था। उन्होंने उसकी खरी आलोचना लिख डाली।

कहावत है—'खरा कहैया दाढ़ीजार।' खरी कहनेवाले को लोग प्रायः खोटी बात सुनाते ही हैं। कोश के प्रशंसकों को मिर्ज़ा गालिब की सच्ची आलोचना बहुत बुरी लगी। वे लोग उनके विरुद्ध भद्दी-भद्दी बातें बकने और लिखने भी लगे। गालिब सबको चुपचाप सहते गए। उन्होंने किसीको कुछ भी नहीं कहा। उनके विरोधी लोग मनमानी कीचड़ उछालते रहे।

उनके एक शिष्य से यह नहीं देखा गया। उसने गालिब से कहा—हज़रत, आप इस तरह चुपचाप अपमान क्यों सह रहे हैं; आप भी इन लोगों को ऐसा कड़ा जवाब दीजिए कि सबके मुंह बंद हो जाएं! आपके सामने इनकी हस्ती क्या है?

गालिब उछल-कूद मचानेवालों की सही कीमत जानते थे। ऐसे लोगों के मुंह लगना उन्होंने ठीक नहीं समझा। उनमें इतना आत्मविश्वास था कि वे साधारण लोगों की निंदा-स्तुति को परवाह नहीं करते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उन्होंने शिष्य को उत्तर दिया—मियां ! कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी उसको लात मारोगे ?

शिष्य चुप हो गया। आगे चलकर लोगों को उस कोश के बारे में गालिब की ही राय माननी पड़ी। उनके विरोधियों को नीचा देखना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२७

रामकृष्ण परमहंस

'परत भजन में भंग'

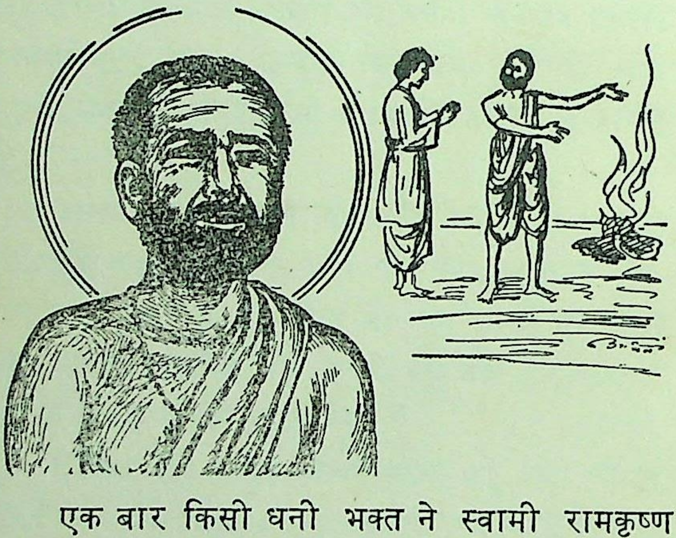

एक बार किसी धनी भक्त ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस को एक बहुत बढ़िया ऊनी दुशाला भेंट किया। स्वामीजी ऐसी चीज़ों के शौकीन तो थे नहीं, फिर भी प्रेमी भक्त के आग्रह से उसको लेकर लापरवाही से ओढ़ने-बिछाने लगे। उस दुशाले का दुरुपयोग देखकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक दिन एक सज्जन ने उनसे कहा—महाराज, यह दुशाला तो बहुत कीमती है ; इसको सम्हालकर इस्तेमाल करना चाहिए ।

परमहंसजी ने उत्तर दिया—क्या आप चाहते हैं कि मैं अपने मन को भगवान से हटाकर इस तुच्छ वस्तु में लगाऊं ! किसी छोटी चीज़ के पीछे एक बहुत बड़ी चीज़ को गंवा देना बुद्धिमानी की बात नहीं है ।

यह कहकर उन्होंने दुशाले के एक कोने को तुरंत आग से जला दिया और उन सज्जन से कहा—लीजिए, न तो अब यह मूल्यवान रहा और न सुंदर ही ; अब कभी मेरे मन में इसको सम्हालने की चिंता नहीं पैदा होगी और मैं अपना सारा ध्यान भगवान की ही ओर लगा सकूंगा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२८

चैतन्य

'सन्त हृदय नवनीत समाना'

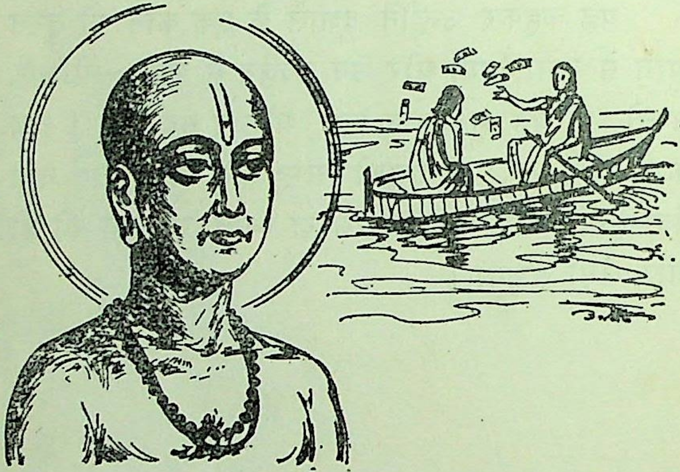

एक बार चैतन्य महाप्रभु नाव से कहीं जा रहे थे। उसी नाव पर उनके बचपन के मित्र रघुनाथ पंडित भी थे। पंडितजी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे।

चैतन्य ने उन्हीं दिनों बड़े परिश्रम से न्याय पर एक उच्चकोटि का ग्रन्थ लिखा था। उन्होंने उसे पंडितजी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को दिखाया और उसके कुछ अंश पढ़कर सुनाए भी।

पंडितजी कुछ देर तो उसको बड़े ध्यान से देखते-सुनते रहे, उसके बाद उनका मुंह लटक गया और वे रोने भी लगे। यह देखकर चैतन्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने ग्रन्थ का पाठ बन्द करके पंडितजी से इसका कारण पूछा।

पंडितजी पहले तो 'कुछ नहीं, कुछ नहीं' कहकर टालते रहे, अन्त में बहुत पूछने पर गहरी सांस लेकर बोले—मित्र निमाई! क्या पूछते हो! मेरी तो बहुत दिनों की तपस्या आज निष्फल हो गई। मैंने कई वर्षों के घोर परिश्रम से न्याय पर एक बहुत बड़ा ग्रंथ लिखा था; सोचता था कि वह अपने ढंग का बेजोड़ होगा और उससे मुझे संसार में बड़ा यश मिलेगा, लेकिन आज मेरी आशा-अभिलाषा पर पानी फिर गया। इस विषय पर तुम्हारा यह ग्रंथ इतना उत्तम है कि उसके आगे मेरे ग्रन्थ को कोई पूछेगा भी नहीं। उसका तो सारा महत्त्व ही नष्ट हो गया। सूर्य के आगे दीपक की क्या महिमा? मैं अपनी हानि से बहुत दुःखी हूं।

चैतन्य बड़ी सरलता से हंसते हुए बोले—भाई,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसके लिए इतना दुःखी क्यों होते हो ? लो मैं इसे फाड़ फेंकता हूँ, अब तुम्हारे ग्रन्थ का गौरव कम नहीं होगा ; इसलिए प्रसन्न हो जाओ।

पंडितजी के सुख-सन्तोष के लिए उदार हृदय चैतन्यदेव ने उसी समय अपने उस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को फाड़कर गंगा में फेंक दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२९

महात्मा गांधी

सूर्य को दीपक दिखाना

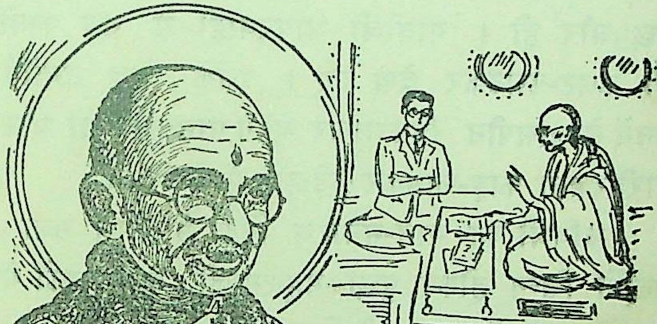

एक बार गांधीजी जहाज़ से इंगलैण्ड जा रहे थे। उसी जहाज़ पर एक और सज्जन थे, जिन्होंने गांधीजी की प्रशंसा में कई पृष्ठों की एक लम्बी कविता लिखी थी। उसे वे जहाज़ पर हर किसीको दिखाते और सुनाते फिरते थे। सबने उनकी रचना की सराहना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भी की। इससे उत्साहित होकर वे उसे गांधीजी के कर-कमलों में समर्पित करने उनके पास पहुंचे।

गांधीजी उस कविता को हाथ में लेकर देखने लगे। कवि महोदय सोचते थे कि वे एक-एक पंक्ति में अपना गुणगान देखकर गद्‌गद हो जाएंगे और बड़े हर्ष से उस भेंट को स्वीकार कर लेंगे। लेकिन हुआ कुछ और ही। गांधीजी लापरवाही से सब पन्नों को उलट-पलटकर देख गए। इसके बाद उन्होंने उनमें से आलपीन निकालकर अपने पास रख ली और सारी रचना फाड़-फाड़कर कूड़ेखाने में फेंक दी।

कविजी का मान-मनोरथ मिट्टी में मिल गया। उन्होंने खिन्न होकर पूछा—महात्माजी, इतने पृष्ठों में आपको कुछ भी सार नहीं मिला ?

गांधीजी पिन की ओर संकेत करके बोले—बस, यही एक काम की चीज़ मिली। इसको मैंने अपने पास रख लिया।

कविजी हताश होकर चले गए।

* * *

SPS
891.433 R 11 A
25651
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

25657

सचित्र लोककथा-माला

लोककथाएं हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। प्रस्तुत लोककथा-माला में मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद कथाएं सजीव और चटकीली भाषा में दी गई हैं। ये पुस्तकें स्त्री-पुरुष, बाल-युवा-वृद्ध—सभी के लिए स्वस्थ मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करती हैं। मोटा मोनो टाइप, बढ़िया कागज़, कलात्मक मुद्रण, बहुरंगे आवरण। इन सब पुस्तकों के लेखक हैं, श्री आनन्दकुमार।

नीति-कथाएं	१·२५
मनोरंजक कथाएं	१·२५
भारतीय कथाएं	१·२५
सदाचार की कथाएं	१·२५
महापुरुषों की कथाएं	१·२५
लोक-कथाएं	१·२५
अमर कथाएं	१·२५
शिक्षाप्रद कथाएं	१·२५
आदर्श कथाएं	१·२५
जातक कथाएं	१·२५

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE